प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य १।) रुपया

मुद्रक
उग्रसेन जैन
इंडिया प्रिंटर्स
एस्प्लेनेड रोड, दिल्ली-६

नोआखाली में सुलगी हुई आग बुझाने का

जो दैवी कार्य महात्मा गांधी ने आरम्भ किया था

उसे

उसी महान् आत्मा के आशीर्वाद के बल पर,

जिसने अपनी जान पर खेलकर पूरा किया,

उस महात्मा जी की धर्म-कन्या और

मेरी धर्म-भगिनी

श्रीमती सुशिला पै

को

सर्मापत

मामासाहेब वरेरकर

मामा वरेरकर नाम से महाराष्ट्र ही नहीं वल्कि हिन्दुस्तान के नाटच-क्षेत्र में सु-परिचित व्यक्ति का मूल पूरा नाम श्री भार्गवराम विठ्ठल वरेरकर है। आपका जन्म वम्वई राज्य के रत्नागिरि ज़िले में चिपलूण गाँव में २७ अप्रैल १८८३ ईस्वी में हुआ। वहत्तर वर्ष की आयु में भी मामासाहव का उत्साह और उमंग एक नौजवान को भी लजाने वाली है। नाटक और रंगमंच तो जैसे उनकी नस-नस और रग-रग में संव्याप्त विषय है। अहर्निशि इसी एक विषय का निदिध्याप्स उन्होंने गयी आधी शताब्दी से किया है—नाटककार के नाते, नाटच-निर्माता के नाते, नाटच-रसज्ञ के नाते, नाटच-समीक्षक के नाते, नाटच-संस्थाओं के प्राण के नाते उनका कार्य इतना वड़ा है कि वह एक छोटे से परिचय-लेख में पूरी तरह आ नहीं सकता।

१९३८ में मामा वरेरकर मराठी नाटच सम्मेलन के अध्यक्ष हुए। १९४५ में महाराष्ट्र साहित्य परिषद् और सम्मेलन के सभापति हुए। आजकल वे आकाशवाणी के केन्द्रीय कार्यक्रम-सलाहकारी वोर्ड के सदस्य और साहित्य अकादेमी की जनरल काउन्सिल के सदस्य हैं। संगीत-नाटक अकादेमी पर साहित्य अकादेमी की ओर से वे सदस्य चुने गये हैं। और ताकुला, नैनीताल में श्रीमती महादेवी वर्मा ने जो १९५५ की गर्मियों में साहित्यकारों का शिविर वुलाया था, उसमें भी आपने 'रंगवाणी' नामक एक नयी संस्था का सूत्रपात किया है।

मामासाहव अपने एक व्राडकास्ट भाषण में वता चुके हैं कि वहुत वचपन से उन्हें नाटक मंडली का शौक पैदा हुआ। एक नाटक वाले की चपत खाकर वे जन्म भर के लिए सच्चे 'नाटक वाले' वन गये। आपने

मराठी नाटच साहित्य में अपनी ४६ नाटच-पुस्तकों से एक युगांतर उपस्थित कर दिया। मराठी रंगभूमि पर साहित्य से भी अधिक संगीत को जो अवास्तव महत्त्व था उसे मामासाहब ने कम किया। मराठी नाटक को न केवल समसामयिक, सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं से संबद्ध रखा—नाटकों पर टैक्स लगाने के विषय में लिखा उनका 'करग्रहण' नाटक १९२७ में लिखा गया था जिसे तब की पुलिस ने क़ाबिले-ज़ब्ती समझा—पर नाटकों की सामाजिक उपयोगिता का महत्त्व भी नये सिरे से सिद्ध किया। मामासाहेब के हाथों से आजतक जितने सामाजिक, राजनैतिक प्रश्न नाटक रूप से विवेचित हुए हैं उनकी संक्षिप्त तालिका देना उचित होगा। नीचे हम मामासाहेब की समग्र नाटच-कृतियों की सूची दे रहे हैं। ब्रैकेट में सामाजिक समस्याएँ भी इंगित रूप में दी हैं। रचना-काल प्रकाशन-काल तथा अभिनय-काल सन् के रूप में दिया है :—

१. कुंजविहारी—१९०८; २. संजीवनी—१९१० (शराबबंदी); ३. सरस्वती—१९१३; ४. वरवर्णिनी—१९१३; ५. हाच मुलाचा बाप—१९१६ (दहेज की समस्या; बंगाल की स्नेहलता ने जो आत्महत्या की थी उससे प्रेरणा पाकर यह नाटक लिखा जो अबतक महाराष्ट्र में सैंकड़ोंबार खेला गया, नाटक के दर्जनों संस्करण छपे हैं।); ६. सम्राट भिखारी—१९१६; ७. लयाचा लय—१९१९; ८. सन्याशाचा संसार—१९१९ (इसमें मिशनरियों की भाषा-विकृतियों पर व्यंग है; देशभक्ति प्रधान विषय है); ९. सत्तेचे गुलाम—१९२२ (सत्याग्रह); १०. तुरुंगाच्या दारांत—१९२३ (असहकारिता); ११. नवा खेल—१९२४; १२. कर-ग्रहण—१९२७ (मनोरंजन टैक्स); १३. करीन ती पूर्व—१९२७ (स्त्री स्वातंत्र्य); १४. सोन्याचा कळस—१९३२ (मामा का दूसरा अत्यंत महत्त्वपूर्ण खेल; सत्तेचे गुलाम के विषय की परिणति—मालिक और मिल-मज़दूरों के सम्बन्धों पर भारतीय भाषाओं में सर्वप्रथम मामा ने लेखनी उठाई—धावंता धोटा उपन्यास लिखा और यह नाटक; गॉल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ़' जैसा शांतिपूर्ण समाधान; १५. जागती ज्योति—१९३२ (एक ही सेट पर

तीन दृश्यों का एकांकी); १६. स्वयंसेवक—१६३४; १७. समोरासमोर—१६३७; १८. कोरडी करामात—१६३८ (शरावबंदी); १६. त्याची घरवाली—१६३८; २०. भाग्या चा भगवंत—१६३६; २१. रंगभूमीच्या वाटवेर—१६३६; २२. उड़ती पांखरें—१६४१ (द्विभार्या और झूठे रोमांस के विरोध में नाटक); २३. माझ्या कलेसाठीं—१६४१ (पार्श्वनाथ अलतेकर के रेपेर्टारी ग्रुप को जिससे बड़ी प्रेरणा मिली—कलाकार के जीवन-संघर्ष का चित्र); २४. सारस्वत—१६४१ (मामासाहेब का सर्वश्रेष्ठ माना जानेवाला एक अभिनय टेकनीक का नाटक । इसका अनुवाद प्रभाकर माचवे ने किया है और शीघ्र ही प्रकाशित होगा); २५. चला लढ़ाईवर—१६४१; २६. न मागतां—१६४४; २७. सिंगापुरांतून—१६४४ (यह मामा का एक बड़ा विवाद्य नाटक रहा । प्रगतिशीलों ने इस नाटक को बहुत उछाला था; पर सुभाष के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख सुखद नहीं थे । मामा से सन् १६४५ में बम्बई में उनके घर पर मिला तब एक हिंदी अनुवाद की पांडुलिपि भी मामा ने मुझे दी थी । मैंने उससे हिंदी में अपनी रचनाएँ अनुवाद रूप में छापना वे शुरू न करें ऐसी सलाह दी थी । जो उन्होंने मानली थी ।); २८. सन्याशाचे लग्न—१६४५; २६. धरणीधर—१६४६; ३०. खेलघर—१६४७; ३१. जिवाशिवाची भेंट—१६५० (इस की हिंदी अनुवाद पांडुलिपि तैयार है । यह नाटक भी मामा के प्रसिद्ध नाटकों में से है । यह भी अहिंसक मार्ग से जाति-भेद मिटाने पर आग्रह करता है ।); ३२. दौलतजादा—१६५०; ३३. जागलेली आई—१६५०; ३४. भूमिकन्या सीता—१६५१ (यह पहले श्री. गो. कृ. टेंबे के हिंदी अनुवाद रूप में छपा, ग्रंथ का उद्घाटन जैनेन्द्रकुमार के घर शनिवार गोष्ठी में हुआ । मैंने वहाँ सीता पर दुर्गा भागवत के निबन्ध का अनुवादांश सुनाया था, भूमिका रूप में यह नाटक कर्नल गुप्ते ने डाइरेक्ट करके नैशनल स्टेडियम में खेला । इस नाटक को देखते समय काकासाहेब कालेलकर अश्रुसिक्त नयनों से द्रवित हो उठे—यह सब मैंने देखा है । हिंदी अनुवाद की सुधरी हुई आवृत्ति या संस्करण तैयार है ।); ३५. तिलाच ते कलते—

१९५१; ३६. द्वार केचा राजा—१९५२ (इसमें विश्व शांति की समस्या है।) ३७. अ-पूर्व बंगाल-१९५३ (नोआखाली की घटनाओं पर भारतीय भाषाओं में पहला नाटक); ३८. लंकेची पार्वती—१९५३।

इन अड़तीस बड़े नाटकों के अलावा मामा के छोटे नाटक और एकांकी-संग्रह पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं, वे ये हैं—वज्र कुसुम (१९१३); आजचे संवाद (१९३०); पापी पुण्य (१९३१); संसार (१९३२); नामा निराला (१९३३); सदा बंदिवान (१९४३); कडक लक्ष्मी (१९४५); चंद्रचकोरी आणि इतर एकांकिका (१९५१-५४)—इनमें अंतिम नाटक रेडियो के नाट्य-महोत्सव के लिए विशेष रूप से लिखा गया था। इसका अनुवाद प्रशांत पांडे ने हिंदी में किया और कई बार, कई स्टेशनों से यह प्रसारित हो चुका हैं।

मामा ने केवल नाटक लिखे हों सो बात नहीं। उन्होंने उन्तीस उपन्यास लिखे हैं जिनमें १९२६ में लिखी 'चिमणी' (चिड़िया) की छाप अभी भी मेरे मन पर है। मामा की यह पहली किताब मैंने सन् '३१ में इंदौर में पढ़ी थी। इसमें एक होटल वाली की लड़की सर्कस में जाती है। और पुरुष जाति के खिलाफ अपने चाबुक चलाती है—शब्दों के नहीं, सचमुच के चाबुक। पुश्किन की कथा उन दिनों पढ़ने में आयी थी, शायद 'क्वीन ऑफ़ दि स्पेड्स्' जिसकी नायिका भी सर्कस वाली थी। बाद में १९२९ में मामा ने एक बड़ा साहित्यिक पर 'प्रैक्टिकल जोक' किया। 'गतभर्तृका' उपनाम से 'विधवाकुमारी' नामक एक उपन्यास लिखा, जिसकी बड़ी तारीफ स्वर्गीय न० चि० केलकर ने कर दी, यह न जानते हुए कि मामा वरेरकर उसके लेखक हैं। बात यह थी कि मामासाहेब पूना, पूने वाले लेखक और पूने वाले पिट्ठी-दिल के राजनीतिज्ञों के बड़े कड़ुए आलोचक शुरू से रहे हैं। बाद में जब यह भंडा फूटा तो केलकर बहुत पछताये। पर अब पछताये क्या होत है, जब चिड़िया चुग गयी खेत।' सितंबर १९५५ के 'सह्याद्रि' में प्रकट चिंतन स्तंभ में किसी ने (क्योंकि लेखक अनामिक है) वरेरकर को सम्मान ग्रन्थ देने का सुझाव

रखा है। ध्यान रहे 'सह्याद्रि' स्व० न० चिं० केलकर का संस्थापित और उनके जीवन भर संपादित पत्र रहा है।

'विषवाकुमारी' कांड के बाद मामा के अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं—'घांवता धोटा' (भाग १—१९३०; भाग २—१९३३); मजदूरों के आंदोलन का सबसे पहला वर्णन भारतीय वाङ्-मय में मामा ने किया। ऐसी सहानुभूति से और मानवीयता से जिसकी पहली मिसाल अन्यत्र मिलनी मुश्किल है। रूस के गोर्की के 'मात' उपन्यास का वहाँ की वैचारिक क्रांति में जो हाथ रहा हो, या ह्यूगो के 'ला मिज़रेब्ल' का फ्रांसीसी वैचारिक परिवर्तन में—महाराष्ट्र का मजूर मात्र मामा का ऋणी है, इस उपन्यास के लिए। गोदू गोखले में (भाग १—१९३१; भाग २—१९३३) क्रांतिकारिणी महिला का चित्रण मामा ने बड़ी निर्भीकता से किया। बाद में उनके अनेक उपन्यास हैं जिनमें कई छोटी-बड़ी सामाजिक समस्याएँ हैं; परन्तु अगली महत्त्वपूर्ण कृति 'सात लाखांतील एक'—सात लाख में से एक—(१९४१) है। कृषक जीवन का ऐसा सुन्दर चित्रण अन्यत्र कम मिलता है। भारतीय भाषाओं में कृपक जीवन के जो थोड़े से अमर उपन्यास हैं जैसे उड़िया में फकीर मोहन सेनापति का 'छमन आगुंठ' या हिन्दी में प्रेमचन्द का 'गोदान, उसी कोटि का यह उपन्यास है। वस्तुतः 'फाटकी वाकल' (फटा कंवल) और 'मी-रामजोशी' (मैं रामजोशी हूँ) यह १९४१ के मामा के तीनों उपन्यास एक अलग दुनिया हमारे सामने उपस्थित करते हैं। आज जो श्री० ना० पेडसे या गो० नी० दांडेकर की कोंकण की प्रादेशिक पार्श्वभूमि पर आधारित जो कथा-कृतियाँ अब इतनी प्रसिद्ध हुई हैं—इनकी परंपरा के बीज मामा की इस औपन्यासिक सृष्टि में निहित हैं। अन्य उपन्यास—संसार की सन्यास (१९१४), कुलदैवत, परतभेट, भान-गडगल्ली, विकारी वात्सल्य, वेणू वेलणकर, उमलती कली, तरते पोलाद, लढाईनतंर आदि।

मामासाहब के पाँच कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं—स्वैरसंचार (१९३२); वैमानिक हल्ला (१९३८); षोडशी (१९३६); एकादशी

(१९४४); भालू गुरव और अन्य कहानियाँ (यंत्रस्थ)।

मामा की अन्य निबंध-कृतियों में आघात (१९३६); माझा नाट की संसार (भाग १—१९४१; भाग २—१९५२); सात अवस्था (१९४२)। श्रुतिका (१९४२) आदि हैं। इसके अलावा मामा ने शरचंद्र का पूरा साहित्य ३२ पुस्तकों के रूप में बंगला से मराठी में अनुवादित किया है। सुनता हूँ अब इस अवस्था में बंकिमचंद्र का भी अनुवाद उन्हें करना पड़ रहा है—१२ खंड इसके निकल चुके हैं। और सबसे दर्दनाक बात यह है कि रंगभूमि के ह्रास के बाद, अथवा सिनेमा द्वारा रंगभूमि के खाये जाने के बाद अब मामा को अपनी आजीविका के लिए सन् '५१ और '५२ में २५ से ऊपर जासूसी कहानियों की किताबें भी लिखनी पड़ीं, जो उन्होंने अपने नाम से नहीं छापीं।

इस प्रकार से मामा की लेखन-सृष्टि छोटी नहीं है। परिभाषा में भी, और परिणाम में भी उनके जैसा लेखक महाराष्ट्र में और दूसरा गिनाया नहीं जा सकता। दो साल पहले नई दिल्ली में सस्ता साहित्य मंडल में एक सभा में मामा ने कहा (भाषण का मराठी से हिन्दी अनुवाद मैं करता जा रहा था) —'अब तक हमारी जिंदगी तो कष्ट में, तपन में बीती ही है, आशा है कि हमारी स्मशान-यात्रा जितना पैसा लेखन से हमारे लिए बचा रहेगा—पर ये आगे जो हमारी पीढ़ी आ रही है, इनके दो जून भोजन की व्यवस्था आप लोग नहीं करोगे, तो ऊँचा साहित्य पैदा कहाँ से होगा ?' आप लोगों से मतलब राजनीतिज्ञ, गांधीवादी, प्रकाशक, पाठक इत्यादि से था। उनका भाषण इतना प्रभावपूर्ण था कि मेरे जैसा सहसा भावाकुल न होने वाला आदमी भी गद्गद् हो आया। मामा एक उत्तम वक्ता हैं। अंग्रेजी में और मराठी में वे धारा-प्रवाह बोलते हैं। खामगांव मराठी साहित्य सम्मेलन में और नागपुर में 'मराठी रंगभूमि के विकास' पर छः व्याख्यानों में मैंने देखा और सुना है कि उनकी विलक्षण स्मृति, समर्पक व्यंग्य-विनोद और दुनिया से अलग अपने मत प्रतिपादित करने की उनकी वक्तृत्व-कला में

कोई उनका सानी नहीं ।

व्यक्तिशः मामा सादगी के अवतार हैं । सन्, ३८ में मैंने उज्जैन के एक साहित्यिक समारोह में उन्हें पहली बार देखा । तब से अब तक उनकी वेश भूषा वही है—एक खद्दर की धोती, कुर्ता, टोपी—और एक यष्टिका । बीड़ी निरंतर पीते रहते हैं—इसके अलावा उन्हें कोई व्यसन नहीं । मामा स्पष्टवक्ता हैं; इस आदत के कारण 'सादुल्ला खरी खरी कहे, सब के मन से उतरा रहे' वाली बात हुई । और मामा को अनुल्लेख और उपेक्षा मराठी में कई वर्षों तक सहनी पड़ी । विनोदी स्वभाव होने से थोड़ी बहुत अतिरंजना भी वे करते हैं, तब से मामा की 'थापें' (गप्पें) महाराष्ट्र में यों मशहूर हो गयीं जैसे बर्नार्ड शॉह की कई कहानियाँ ! मामा मन के बड़े उदार, ममतालु, वत्सल, मानवता से भरे, सच्चे संवेदनाशील कलाकार हैं । साहित्य में सच्चे जनतंत्र के वे प्रतिनिधि हैं—वे छोटे से छोटे लेखक को प्रोत्साहन देते हैं—सबसे यकसाँ मिलते रहते हैं । देश में जो जन नाटक का आंदोलन फिर से चल उठा, उसमें मामा की बड़ी प्रेरणा रही है, अब्बास ने उस ऋण को कबूल किया है ।

मामा की कृतियाँ हिन्दी में एक क्रम से, सिलसिले से श्री रामलाल पुरी ला रहे हैं । यह बहुत बड़ा काम उन्होंने किया है । इससे हिन्दी के नाट्य-साहित्य के अभाव ही पूरे नहीं होंगे, बल्कि मराठी और हिन्दी साहित्य के बीच एक मजबूत पुल तैयार होगा । श्री० र० श० केलकर ने मराठी की सारी खूबियाँ। मुहवारे और अर्थच्छटाएँ हिन्दी में उतारने में कोई कसर बाकी नहीं रखी है। उन के परिश्रम की जितनी सराहना की जाय थोड़ी है ।

नई दिल्ली,
१५ अगस्त, १९५५

प्रभाकर माचवे

प्रस्तावना

मराठी रंगमंच पर खेले गए आधुनिक सामाजिक नाटकों में महाराष्ट्र के वाहर का वातावरण शायद ही लिया गया है। इस प्रकार का पहला नाटक अच्युतराव कोल्हटकर का 'विवेकानन्द' है। तत्पश्चात् १९१९ में लिखे गए मेरे 'सन्याशा चा संसार' (संन्यासी का संसार) नाटक में पंजावी, दक्षिणी और महाराष्ट्रीय इन तीनों प्रदेशों के पात्रों को अपनाया गया था। साथ ही उस नाटक का स्थान भी दक्षिण भारत था। 'सोन्या चा कलस' नामक मेरे नाटक में गुजराती पूंजीपति और मराठी मज़दूर का समावेश किया गया है पर उसका स्थान महाराष्ट्रीय यानि वम्वई है। इसके अतिरिक्त 'फाल्गुनराव' नाटक की संगीत रचना के समय देवलजी ने उस नाटक में वेश-भूषा के लिये गुजराती पात्र लिए थे पर उनकी गठन गुजराती नहीं थी।

'आटिका' और 'भाव-वंधन' नाटकों में वेश-भूषा द्वारा कन्नड़ चरित्र लाए गए थे पर वे केवल हास्य रस ही के लिए। उनमें भी कन्नड़ की वास्तववादी मनोवृत्ति नहीं थी। अप्पा टिपणीस के 'राजरंजन' नाटक में एक चीनी पात्र भी रक्खा गया था पर वह भी हास्य रस की परिपुष्टि ही के लिए।

ऐसे ही कुछ पर प्रान्तीय पात्र, विशेषतः मारवाड़ी पात्र, माधवराव जोशी ने भी अपने नाटकों में रक्खे हैं पर अभी तक किसी प्रान्त विशेष की सामाजिक विशेषता पर आधारित कोई मराठी नाटक रंगमंच पर नहीं आया था। जहाँ तक मैं समझता हूँ यह नाटक इस दिशा में किए गए प्रयत्न का पहला ही उदाहरण है।

पिछले त्रेपन साल से वंगाल, वंगला साहित्य और वंगला रंगमंच से मेरा निकट सम्बन्ध रहा है। जिन मराठी लेखकों ने पहले-पहल मराठी

पाठकों का बंगला साहित्य से परिचय कराया है उनमें से मैं एक हूँ। मुझे महाराष्ट्र-सा ही बंगाल के बारे में भी अभिमान है। मराठी रंगमंच पर एकाध बंगाली कथानक का नाटक लाने की मेरी पुरानी इच्छा रंगमंच से सम्बन्धित मेरे पैंतालीस सालों के कार्य-काल के पश्चात् आज पूरी हो रही है।

नोआखाली का हत्याकाण्ड भला कौन नहीं जानता? नोआखाली में जो भीषण अत्याचार हुए उनके कारण पूर्व बंगाल के अनेक परिवार मिट्टी में मिल गए। अकाल के कारण जो पैंतीस लाख व्यक्ति भूखों मरे उनमें भी अधिकतर लोग पूर्व बंगाल के ही थे। पूर्व बंगाल महाराष्ट्र के कोंकण प्रान्त की ही भाँति एक उपेक्षित प्रान्त है और इसीलिए उस प्रान्त के लोगों की जो दुर्गति हुई है उसका चित्र जनता के सम्मुख उपस्थित करना आज रह गया है।

नोआखाली की यह आग बुझाने के लिए महात्मा गांधी स्वयं वहाँ गए थे। अपनी असामान्य कर्त्तव्य-बुद्धि के बल पर उन्होंने वह आग बुझाई थी। पर बाद में भारत के विभाजन के कारण उनका यह कार्य जितना सफल होना चाहिए था उतना सफल नहीं हो सका। उस अत्याचार-काल में भ्रष्ट हुई कई स्त्रियों का जीवन बर्बाद हो गया पर उन अपहृतों का उद्धार नहीं हो सका जिसके कारण बहुतों ने अपना धर्म छोड़ दिया और बहुतों का जीवन सर्वदा के लिए मिट्टी में मिल गया।

महात्माजी जिस समय नोआखाली में थे उस समय वहाँ जाकर वहाँ की स्थिति देखने की मेरी उत्कट इच्छा हुई थी पर महात्मा गांधी की उपस्थिति में वहाँ की स्थिति की ठीक-ठीक जानकारी उपलब्ध होना असम्भव समझकर उनके दिल्ली लौट आने तक मैंने अपना इरादा स्थगित रक्खा।

पूर्व बंगाल के कौटुम्बिक रीति-रिवाज तथा आचार-विचारों से अनभिज्ञ होने के कारण किसी स्त्री को साथ लिए बिना वहाँ का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं था। इसलिए मैंने बंगाल कांग्रेस कमेटी के तत्कालीन

अध्यक्ष श्री किरणशंकर से सहायता के लिए प्रार्थना की। उन्होंने मुझे एक स्वयं-सेविका दी जिससे मेरा कार्य सुलभ हो गया।

महात्मा गांधी के नोआखाली से चले जाने के बाद उनकी धर्म-कन्या श्रीमती सुशीला पै ने उनका कार्य आगे चालू रक्खा था। उस समय वह बाहर थीं पर उस समय वह जिस क्षेत्र में काम कर रही थीं वहाँ तक पहुँच पाने का भरोसा न होने के कारण विवश होकर मुझे स्वयं-सेविका साथ लेनी पड़ी।

नोआखाली ज़िले का जितना भाग देखना आवश्यक था उतना देखने की सामर्थ्य मुझ में नहीं थी। बाँस के दो टुकड़ों के सहारे नाले पार करने का जो चमत्कार महात्मा जी ने दिखाया था वह वास्तव में अपूर्व था। उस जगह यात्रा के साधनों का अभाव कोकन से भी अधिक था। फिर भी दो-तीन गाँवों में जाकर दोनों धर्मों के स्त्री-पुरुषों से मैं मुलाकात कर सका, उसी का चित्रांकन यह नाटक है।

इस नाटक के प्रथम तीन अंक प्रत्यक्ष घटित प्रसंगों पर आधारित हैं। चौथा अंक कुछ-कुछ काल्पनिक-सा है फिर भी पूर्व बंगाल की अपहृत स्त्रियाँ कलकत्ते के वेश्या बाजार में आकर बसी होने के कारण वह प्रसंग अवास्तविक भी मैं नहीं मानता।

प्रत्यक्ष गांधी जी तथा विभिन्न स्थानों के शंकराचार्यों के आदेश पाने के बावजूद भी कई अपहृत स्त्रियों ने अपना जात-धर्म छोड़ दिया है। धर्म के नाम पर होने वाली मनुष्य की यह हत्या दानवीय है पर दुर्भाग्य है कि फिर भी इस वृत्ति को ब्रेक नहीं लगाया जाता है।

नोआखाली से लौटने पर चित्रकार दलाल की 'दीपावली' के दो अंकों में मैंने प्रस्तुत कथानक सूचक दो कहानियाँ लिखी थीं वह इसलिए कि इस कथानक पर आधारित नाटक उस समय रंगमंच पर खेलना सम्भव नहीं था।

किसी भी भाषा में जो साहित्य निर्माण होता है वह उन भाषियों की मनोवृत्तियों को प्रभावित करता है। महाराष्ट्र में आरम्भ से ही स्त्री का

चरित्र संघर्षमय रहा है। शिवा जी की माता जीजाबाई से लेकर आज़ नौकरी पेशा तथा व्यवसायी वर्ग तक मराठी स्त्रियाँ अगाड़ी लड़ी हैं और लड़ रही हैं। मराठी उपन्यास और नाटक ऐसे संघर्षपूर्ण स्त्री पात्रों द्वारा स्त्री जाति को प्रोत्साहन देते चले आए हैं। बंगला साहित्यकारों ने आरम्भ से ही इस बात का परिपोषण नहीं किया। बंकिमचंद्र से लेकर वर्तमान युग के किसी भी नए लेखक ने अपने साहित्य में परिस्थितियों से जूझने वाला नारी-चरित्र-निर्माण नहीं किया है। शरद बाबू के साहित्य में विशेषतः 'पथेरदाबी' (सव्यसाची) और 'शेष प्रश्न' उपन्यासों में सामाजिक क्षेत्र में संघर्ष करने वाले नारी पात्र हैं पर वे हिन्दू नहीं हैं।

बंगला साहित्य में जब जब हिन्दू नारी का चित्रण हुआ है तब तब वह पतिपरायण, सहनशील, अन्याय का विरोध न करने वाली, बल्कि अन्याय के सम्मुख चुपचाप सिर झुकाने वाली, सनातनी, अबला दिखाई गई हैं। इतना ही नहीं, उसकी दुर्बलता को और भी बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है। नोआखाली के अत्याचार का कारण यही प्रवृत्ति बनी यह बात बंगला साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले को स्पष्ट दिखाई देगी।

'नाट्य निकेतन' के श्री मोतीराम रांगणेकर ने इस नाटक का अभिनय करना स्वीकार किया। डेढ़ साल पहले ही मैंने यह नाटक लिख लिया था पर उसके अभिनय में अनेक बाधाएँ उपस्थित हुईं फिर भी उनका सामना करके यह नाटक महाराष्ट्र को दिखाने का जो सौभाग्य मुझे प्राप्त हो रहा है उसका श्रेय मोतीराम रांगणेकर जी को है।

१-५-५३
हाजी कासम वाड़ी
बम्बई-७

मामा वरेरकर

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

जगदीश	:	चौमोहानी गाँव का ज़मींदार
राखाल	:	जगदीश का छोटा भाई
करीम चाचा	:	जगदीश के पिता का मुसलमान मित्र
अजित	:	सुचेता से प्रेम करने वाला युवक—भावी पति
मण्टू	:	दल्ला

स्त्री पात्र

अबला	:	जगदीश की पत्नी
सुचेता	:	जगदीश की बहन
शैलेश्वरी (मा)	:	जगदीश की मा

अभिनय-भूमिका

मूल नाटक का सर्वप्रथम अभिनय नाट्य निकेतन लिमिटेड द्वारा श्री मो० ग० रंगरगोकर के निर्देशन में २४ जनवरी, १९५३ को भारतीय विद्या-भवन, चौपाटी, बम्बई में हुआ। भूमिका इस प्रकार थी—

अजित—	प्रसाद सावकार
सुचेता—	दुर्गा नागेशकर
मा—	नलिनी डेरे
अबला—	शारदिनी
जगदीश—	रामचंद्र वर्दे
राखाल—	अविनाश
करीम चाचा—	करमरकर
मण्टू—	श्रीपाद जोशी
संगीत—	श्रीधर पार्सेकर
नृत्य—	पार्वती कुमार
निर्देशक पद्यरचना } —	मो० ग० रांगणेकर

अ-पूर्व बंगाल

पहला अंक

[नोआखाली के चौमोहानी नामक गाँव के जमींदार का घर। मध्य द्वार में से पिछला आँगन और उसके पीछे घर के इर्द-गिर्द की वाड़ तथा उसका दरवाजा दिखाई दे रहा है। भीतरी सजावट पुराने ढंग की है। एक वड़ा-सा तख्त है, उस पर एक गद्दा और तकिए रक्खे हुए हैं। दूसरी ओर ऐसे ही पर छोटे दो तख्त हैं। उन पर गद्दे नहीं हैं। घर में जाने के लिए दाएँ-वाएँ दोनों ओर द्वार है। वे रंगमंच के सबसे अगले भाग में हैं। वाहरी दरवाजे पर काली माई का चित्र टँगा है। दोनों ओर दीवाल पर वंगाली ढंग के देवी-देवताओं के चित्र हैं। इसके अतिरिक्त मेज-कुर्सी आदि आडम्वर वहाँ नहीं है। पर्दा उठते समय रंगमंच सुनसान है। भीतर से किसी के गाने की आवाज सुनाई पड़ रही है।

कैसा अनर्थ प्रभो
घर घर में हुआ अजव !
देखते विनाश कहीं
वालक तुम्हारे सव !
प्रेम भावना विलमी
संवेदना वची नहीं,
भग्न हो गए हृदय—
यह अनर्थ देख अव !

पर्दा उठते समय दरवाजे में से अजित अन्दर आता है और जिस ओर से गाने की आवाज आ रही है उस ओर के दरवाजे की ओर

झुककर देखता है और तख्त पर बैठ जाता है। सुचेता गाती हुई बाहर आती है। क्षण भर के लिए उसकी नजर अजित पर नहीं पड़ती लेकिन तत्पश्चात् वह उसे देखकर चौंकती है और गाना बन्द करके किञ्चित् मुस्कराकर अन्दर जाने लगती है। अजित उठकर सामने आता है।]

अजित—ठहरो ! (वह ठहरती है, लेकिन उसकी ओर देखती नहीं। वह दंग रह जाता है) मैं अजित हूँ, मुझे पहचाना नहीं ? इतनी जल्दी भूल बैठीं ? आठ ही दिनों में पराया हो गया मैं ? (उसके उत्तर के लिए वह रुकता है) सुचेता !

सुचेता—जी।

अजित—वही हो न तुम ? तुम्हीं हो न सुचेता ?

सुचेता—(बिना उसकी ओर देखते हुए) यह कलकत्ता नहीं—पश्चिम बंगाल नहीं—चौमोहानी गाँव है। कलकत्ते को भूलकर यहाँ बरतना चाहिए।

अजित—वह किस तरह ?

सुचेता—ठीक है ! किस तरह—यह तुम लोग नहीं जान सकोगे, इस सीमान्त गाँव के आचार-विचारों से तुम परिचित नहीं। (एक बार उसकी ओर देखकर मुँह फेरते हुए) किस लिए आए हो यहाँ ?

अजित—किस लिए आया हूँ यहाँ ! क्या तुम्हीं ने मुझे नहीं बुलाया था ?

सुचेता—वह मेरी भूल थी ! इस नोआखाली में जो आग भड़क उठी है क्या उसके बारे में तुम नहीं जानते ?

अजित—यहाँ चौमोहानी में तो कुछ भी नहीं है ?

सुचेता—कौन कह सकता है—आज कुछ नहीं—इस घड़ी कुछ नहीं, लेकिन कब, कहाँ और किस प्रकार दावानल भड़क उठे, कोई कह सकता है ? सोचती हूँ नाहक आई मैं यहाँ, बड़े सुख में थी कलकत्ते में···

अजित—वही तो मैं भी कह रहा था ! क्यों आई हो इधर—न जाने पर तुम्हारा मन इस ओर खिंच रहा था, माँ और भाइयों की याद

तुम्हें व्याकुल किये हुए थी।

सुचेता—दूर से कुछ पता नहीं चलता, मरे अखबार नित्य न जाने कैसी-कैसी खबरें छापते हैं और फिर व्याकुल हो उठता है प्राण। मन बराबर परेशान रहता है। कब कहाँ क्या हुआ होगा—यह सोचकर प्राण आँखों में उठ आता है—(रुककर) अब आ गई हूँ पर सोचती हूँ व्यर्थ आई। कहीं कुछ भी नहीं है पर किसी की भी जान सुरक्षित नहीं है। प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे से डरता है। ये अपने हैं और ये पराये हैं, यह बात कभी मन में भी नहीं आई थी—पर अब करीम चाचा से भी डर लगता है।

अजित—करीम चाचा ! करीम चाचा कौन ?

सुचेता—हमारे पिताजी के दोस्त—दोस्त नहीं, जी-जान से दोनों भाई भाई से थे। पिताजी चल बसे और करीम चाचा रह गए हैं। वही हमारे घर के बड़े-बूढ़े हैं। भैया जब छोटे थे तब करीम चाचा ही ने जमींदारी की देखभाल की और इसीलिए आज भैया को सर उठाकर चल सकना सम्भव हो सका है। आज भी करीम चाचा ही सारा कार्य-भार सँभाले हुए हैं।

अजित—बड़ी विकट समस्या है इस पूर्व बंगाल की। हम कलकत्ते वालों को ये बातें सुनकर बड़ा आश्चर्य होता है (**सुचेता अन्दर जाने लगती है**) ठहरो ! इतनी ही बात करनी थी तुम्हें ?

सुचेता—इतना बोली यही बहुत समझो। आसपास कोई था नहीं इसलिए वर्ना इतनी बात भी नहीं कर पाती (**एक बार अच्छी तरह उसकी ओर देखकर और फिर मुँह फेरकर**) कहाँ ठहरे हो ?

अजित—यहीं आनेवाला था—

सुचेता—(चौंककर) यहीं ?

अजित—यहाँ नहीं तो और कहाँ ? यहाँ भी कोई होटल धरे हैं ? सामान रक्खा एक धर्मशाला में और यहाँ चला आया। गाँव के जमींदार का घर था इसलिए खोजने में कठिनाई नहीं हुई।

सुचेता—तो अब जाओ जैसे आए हो ?

अजित—क्यों ?

सुचेता—बड़े बे-मौके आए । पहले सब कुछ कह डालना चाहती थी इसलिए तुम से आने के लिए कहा था पर अब कैसा चोरी-चोरी-सा लग रहा है । बोलने की हिम्मत ही नहीं हुई मेरी । अब बोलना उतना आसान नहीं और पहले कुछ कह डाले बिना··· **(भीतर से सुचेता की माँ शैलेश्वरी उसे पुकारती हुई बाहर आती है)**

मा—किससे बातें कर रही हो ? **(अजित को देखकर चौंकती है)** यह कौन है ?

सुचेता—कलकत्ते से आए हैं !

मा—लेकिन यह है कौन ?

सुचेता—मेरा मित्र है **(अजित उसकी मा की चरण-रज उठाता है । वह चौंककर पीछे हटती है ।)**

अजित—मैं कोई पराया नहीं हूँ । कई सालों से कलकत्ते में हम पड़ोस में रह रहे हैं । इनके मामा और हम लोगों में बहुत मेल-जोल है । यों ही चला आया था इस ओर—

मा—किस लिए आए थे ? जो कुछ इस ओर हो रहा है क्या उसका तुम्हें पता नहीं ? आसमान से गाज किस समय सिर पर गिर पड़े, कोई भरोसा नहीं । हम लोग उसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं । तुमने क्यों नाहक अपनी मुफ्ती जान खतरे में डाली ? **(सुचेता से)** तुम अन्दर जाओ सुचेता, कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ? यह कलकत्ता नहीं है बेटी, यों ही लोग हँसी उड़ा रहे हैं हमारी···

अजित—हँसी उड़ा रहे हैं ?

मा—तुम अन्दर तो जाओ सुचेता । **(सुचेता अन्दर जाकर दरवाजे के पास खड़ी हो जाती है)** हाँ, यों ही लोग हँसी उड़ा रहे हैं । इतनी बड़ी लड़की कोई और दिखाई देती है इस नोआखाली में ? और कलकत्ते में रखना है इसे पढ़ाई के लिए—यह बात किसी को भी पसन्द नहीं ।

जगदीश भी मना कर रहा था। लेकिन करीम चाचा के एक वार तय कर लेने के वाद कोई कुछ कह सकता था ?

अजित—(वड़वड़ाता है) करीम चाचा !

मा—क्या कहा ?

अजित—कुछ नहीं, आपने करीम चाचा कहा इसलिए जरा आश्चर्य हुआ।

मा—तुम्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। आप लोग हमें 'वंगलटे' कहते हैं—हम वंगलटों के मन में ऐसे भेदभाव कभी नहीं आते।

अजित—लेकिन अव ?

मा—अव क्या और तव क्या, जो है वह ऐसा है। कहते जवान रुकती है। हमारे ही भाईवंद हैं लेकिन यह सव हो रहा है। इस चौमोहानी तक अभी उसकी आँच नहीं पहुँची है यही सौभाग्य है। लेकिन यह सौभाग्य कव तक वना रहेगा यह नहीं कहा जा सकता। हर क्षण हवा वदल रही है (अचानक) कव जा रहे हो वेटा ?

अजित—(हँसकर) वड़े मजे की वात है ! कम से कम वंगालियों के घर में इस प्रकार का स्वागत नहीं हुआ था कभी। आते ही "कव जाओगे ?" ये शब्द कम से कम वंगाली घर से नहीं सुने थे।

सुचेता—(आगे आकर) सुना मा ! कैसी लगी तुम्हें इनकी वात ?

मा—कैसी लगती ? अच्छी-वुरी लगने के दिन अव वीत गए वेटी। पहले कोई इस प्रकार की वात करता तो क्रोध आता—चिढ़ आती। और पहले इस प्रकार कोई वोलता भी क्योंकर ? वंगाली घर में अपरिचित का भी सत्कार हुए विना रह सकता था पहले ? पर वे वीती वातें हैं। आज जमाना वदल गया है। 'कुछ दिन ठहरो' कहने के वजाय 'इसी क्षण चले जाओ, कहने की सच्ची मेहमानवाजी रह गई है इस समय।

सुचेता—पर वह है कौन, किसलिए आया है इतना तो पूछ लेतीं।

मा—किसलिए पूछती ? इसी घड़ी लौट जाने वाले व्यक्ति को दो

शब्द बोलने का कष्ट भी क्यों दिया जाय ?

सुचेता—(अजित से) सुन लिया ?

अजित—हाँ, सुन लिया !

सुचेता—कैसा लगा ?

अजित—सच है ! कैसा लगा मुझे ? मैं कुछ भी सोच सकता था। क्रोध भी आ सकता था, शायद चिढ़ भी आती लेकिन मैं स्वयं डरते-डरते आया था—(रुकता है।)

मा—क्यों ? डर क्यों रहे थे बेटा ?—सुचेता तुम अन्दर जाओ तो। जगदीश आ गया तो वह यह पसन्द नहीं करेगा। जाओ, अन्दर जाओ। (जैसे ही सुचेता भीतर जाने लगती है वैसे ही अबला अन्दर से बाहर आती है। वह केवल सुचेता को ही देख पाती है। शैलेश्वरी और अजित पीछे होने के कारण उसकी दृष्टि से परे हैं।)

अबला—दीदी !

सुचेता—भीतर चलो, पराए लोग आए हैं यहाँ।

अबला—कौन ? (देखकर आँचल आगे खींचती है) मा ही तो ? और यह कौन ?

मा—कहते क्यों नहीं ?

[सुचेता अंदर दरवाजे के पास खड़ी हो जाती है। अबला किंचित् दरवाजे के सामने आकर खड़ी हो जाती है। मा का ध्यान उसकी ओर नहीं है। पर अजित उसे देखकर एक बार चौंकता है और एक कदम पीछे हटता है।]

मा—काहे का डर लग रहा था तुम्हें ? और हां तुमने अपना नाम नहीं बताया ?

अजित—मेरा नाम है अजित, वैसे सुचेता के मामा का और हमारा दूर का रिश्ता भी है पर रिश्ते की अपेक्षा मेल-जोल ही अधिक है। इसी लिए सुचेता से बात करने में उसे ज़रा भी संकोच नहीं होता। और भी एक मामूली-सा कारण है और जो मुझे डर लग रहा था वह उसी का और

वह भय अनुचित नहीं था यह मुझे अभी हाल के अनुभव से विदित होने लगा है। (दो कदम आगे बढ़कर) मैं सगाई का प्रस्ताव लेकर आया हूँ...

मा—किसके लिए ? सुचेता के लिए ?

अजित—जी।

मा—बंगाल के भद्र लोगों की यह रीति नहीं है। ब्राह्मण हो न तुम ?—बंगाली ब्राह्मण ? सगाई का प्रस्ताव लेकर आते हैं लड़की के बड़े-बूढ़े, लड़के वाले नहीं—और स्वयं लड़का तो कभी भी नहीं।

अजित—वह पुराना रिवाज था। अब जमाना बदल गया है।

मा—कलकत्ते में ! यहाँ इस नोआखाली में नहीं। पुराने लोग हैं हम। हमें यह बात नहीं जँचती। जगदीश से मैं कहूँगी बड़े दादा को लिखने के लिए और वह राज़ी हुआ तो मैं स्वयं ही लड़की को लेकर आऊँगी तुम्हारे द्वार। कृपा करके अब जाओ तुम।

अबला—(सामने आकर) ठहरिए—

मा—बहू !...

अबला—जरा ठहरिए। (अजित के सम्मुख जाकर) मैं इस घर की बहू हूँ—मालकिन नहीं—मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है। मा यहीं उपस्थित हैं, उनके सम्मुख रहते हुए मुझे आप-जैसे पराए व्यक्ति से बात नहीं करनी चाहिए थी...'

मा—(किंचित् कठोर शब्दों में) इतना समझती हो न तुम ?

अबला—जी, समझती हूँ। समझती हूँ इसीलिए बोल बैठी। सब कुछ भूल जाने का समय आ गया है अब। मैं भी इसी पूर्व बंगाल की हूँ—पुराने काल के पुराने घराने की हूँ—लेकिन कलकत्ते में घूमी-फिरी भी हूँ कुछ। वहाँ के रीति-रिवाज जानती हूँ मैं। पर अब जो मैं कह रही हूँ वह नये काल की नई रीति के लिए नहीं—इनकी किसी की न सुनिए। कैसा वर-पक्ष और कैसा वधू-पक्ष ! छोटे-बड़े का भेदभाव जला देने वाली आग लगी है इस नोआखाली में ! जा रहे हैं न अभी आप ? (वह कुछ

नहीं बोलता) जाना ही चाहिए—जाइयेगा ना ?

अजित—हाँ। रहने की बात सोचने के लिए आसरा ही नहीं मिला मुझे।

अबला—तो जाइये फिर। रहने के लिए आधार पाने के दिन अब बीत गए। मा ने जो कहा वह झूठ नहीं है। इसी घड़ी यहाँ से चले जाइये—(वह जाने लगता है) ठहरिए! इसी वक्त जाइये, पर अकेले नहीं इसे भी अपने साथ लेते जाइये।

मा—किसे ?

अबला—इन्हें—दीदी को—सुचेता को ले जाइये। वहाँ उसके मामा हैं, वही कन्यादान करेंगे।

मा—वह !

अबला—हाँ, वह कन्यादान करेंगे। यह सुख से रहेंगी। इस आग से बच जायेंगी। हम लोगों का जो होना है वह मुझे साफ-साफ दिखाई दे रहा है। उस धधकती हुई आग में जल-भुन कर खाक होना है हमें। आपके साथ जाने से यह तो जीवित रहेंगी।

मा—यह क्या कह रही हो तुम ?

अबला—क्या झूठ कह रही हूँ मैं ? यह जो रीति-रस्म छोड़कर—लिहाज-मर्यादा छोड़कर बोलने आई हूँ वह इसीलिए कि भावी अशगुन धधकता हुआ देख रही हूँ आँखों के सामने। यह अपना घर है। आप इसे छोड़कर नहीं जा सकतीं—मैं भी नहीं जा सकती। घर के स्वामी निश्चिन्त बैठे हुए हैं, वे भी नहीं जा सकते। जो होनहार है वह टल नहीं सकता। कम-से-कम ये एक तो बचेंगी। एक तो सुखी हो सकेंगी। कलकत्ते में जीवित रहीं तो गंगुली घराने का नाम बना सकेंगी। सुना आपने, ले जाइये इन्हें।

[जगदीश प्रवेश करता है। उसकी आयु तीस से कुछ कम है। वह सोनेश्वरी का बड़ा लड़का, सुचेता का भाई और अबला का पति है। घर का कर्ता-धर्ता पुरुष वही है। वह अन्दर आता है और सामने दिखाई देने

वाले लोगों को देखकर भड़क उठता है।]

जगदीश—क्या हो रहा है यह सब ? यह कौन है ? तुम यहाँ मा ?—यह भी यहीं है !—यह सुचेता भी यहीं ! क्या है यह सब ? कुछ कुलीनता है या नहीं ! और यह सब तुम्हें भाता है मा ? कहाँ गया तुम्हारा कड़ा अनुशासन ? यह कौन है ? और यह उसके साथ बात करती खड़ी है ! (पल्ला आगे सरका के अबला पीछे हटती है)

मा—अच्छा हुआ तुम आ गए, पता नहीं क्या हो गया है इसे ! न जाने यह कैसे अनियंत्रित हो गई है आज ! बिना किसी झिझक-संकोच के बोल रही है इस पराए आदमी से।

जगदीश—कौन है यह ?

मा—कलकत्ते का रहने वाला है। तेरे मामा के पड़ौस में रहता है—सगाई का प्रस्ताव लेकर आया है इसके लिए।

जगदीश—किस के लिए ? कैसी मँगनी ?

मा—इसकी मँगनी करने आया है—सुचेता की—विवाह का प्रस्ताव लाया है।

जगदीश—इसने हमें समझ क्या रक्खा है ? ब्राह्मण या मलेच्छ ?—और तुमने चुपचाप सुन लिया सब ?

मा—मैं चले जाने के लिए कह रही थी इससे…

जगदीश—फिर भी नहीं गया ?

मा—बहू ने रोक लिया।

जगदीश—उसके परिचय का है ?

मा—नहीं।

जगदीश—फिर भी वह बात करती रही उसके साथ ? और तुम चुपचाप देख रही हो ! तुम्हीं ऐसा करने लगो तो फिर चाल-चलन कौन सिखाएगा इन्हें ? क्या तमाशा है। कोई बुड्ढ़ा आता है, तुम्हारी बेटी की मँगनी का प्रस्ताव रखता है, तुम उससे जाने के लिए कहती हो और यह तुम्हारी बहू उसे रोक लेती है। इस घर का मालिक मैं—अभी मर नहीं

गया हूँ। ये इस प्रकार के अनधिकार कारोबार करने का तुम औरतों को क्या अधिकार है ? जरा ठहर जातीं तो क्या हो जाता ?

मा—अतिथि घर आया था।

जगदीश—हाँ, हाँ, जानता हूँ मैं। अतिथि घर आया था तो उसे बिठातीं, गुड़ पानी देतीं और कहतीं—दरवाजे की आड़ खड़ी होकर कहतीं—कि गृह-स्वामी के आने तक उनकी प्रतीक्षा कीजिए। ऐसा कौनसा प्रलय होने लगा था जो बिना मेरा इंतजार किए एक पराए आदमी से चर्चा करने बैठीं तुम बंगाली घर की औरतें ? पिताजी के चल बसने से घर उजड़ तो नहीं गया था ! मा तुम तो यहाँ थीं !

मा—मैंने कहा तो था उससे चले जाने के लिए।

जगदीश—और उसने रोक लिया ! और वह उससे बातचीत करती रही !—और तुम घर की बड़ी-बूढ़ी होकर—तुम चुपचाप खड़ी सुनती रही ! क्या कह रही थी वह उससे ?

अजित—(आगे बढ़कर उसके पैर छूकर नमस्कार करता है) क्षमा कीजिए। भूल हुई मुझ से, मैं यह नहीं जानता था।

जगदीश—देख क्या रही हो ? जाओ सब लोग अन्दर **(सुचेता और अबला अन्दर जाती हैं)** और तुम किस लिए खड़ी हो यहाँ मा ?

मा—घर के स्वामी तुम हो तब भी मैं तुम्हारी माँ हूँ। गांगुली घर की रीति-रस्म मैं तुमसे अधिक जानती हूँ। यह अतिथि है। इसका अपमान नहीं होना चाहिए। समझे ? इसका अपमान नहीं होना चाहिए। अपने बुजुर्गों ने बताया है कि अतिथि देवता होता है। तुम आपे से बाहर हो रहे हो इसलिए इसका अपमान करोगे। मुझे वह सहन नहीं होगा, जो कुछ तुम्हें इससे कहना है मेरे सामने कहो।

जगदीश—मुझे जो कुछ कहना है वह तुम्हारे सामने नहीं कहा जा सकता।

मा—जो मेरे सामने नहीं कहा जा सकता वह तुम कहो ही नहीं तो अच्छा है। तुम्हारे पिताजी होते तो जो वह करते उसकी कल्पना मैं कर

सकती हूँ—तुम नहीं। घर की रीति में तुम से अधिक जानती हूँ। फिर कहती हूँ घर आए अतिथि का अपमान नहीं होना चाहिए। इस समय तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने पर नहीं है। तुम कुछ असंगत बोलोगे—जो न कहना चाहिए कह बैठोगे और जब बाद में मुझे पता चलेगा तो लज्जा से गड़ जाऊँगी मैं। जो कहना था वह मैंने इससे कह दिया है। यह भी विचारा जाने लगा है—

अजित—जी हाँ, मैं जा रहा हूँ। लेकिन माजी अभी जो उन्होंने कहा—उसके बारे में क्या विचार है आपका ?

मा—किस के बारे में ?

अजित—अभी जो उन्होंने कहा था कि सुचेता को साथ ले जाइये।

जगदीश—किसने कहा ? किसने कहा सुचेता को साथ ले जाने के लिए ? कहाँ ले जाने के लिए कहा ?

मा—ज़रा ठहरो। उसे बोलने दो, तुम्हारी पत्नी ने कहा है उससे और मैं भी वही सोचती हूँ !

जगदीश—क्या सोचती हो ? न कभी देखा, न जाना, पता नहीं है कौन। आया—और कहता है सुचेता को ले जाता हूँ मैं !—

मा—उसने यह नहीं कहा, यह कह रही थी तुम्हारी बीबी। उसे क्या कहना है यह मैं अब उससे पूछती हूँ, कहते हो है कौन ! है कौन ? सुचेता उसे पहचानती है—

जगदीश—कैसे ?

मा—अभी उसने नहीं बताया कि तुम्हारे मामा से रिश्ता है उसका, पड़ोस पड़ोस में रहते हैं दोनों। बहू ने जो कहा वह झूठ नहीं है मैं भी अब वही सोच रही हूँ, क्यों जी—क्या नाम बताया था अपना—अजित ही न ? कहाँ रक्खा है तुमने अपना सामान ? तुम यहीं आ जाओ। आज के दिन यहाँ रहो और कल चले जाना कलकत्ते सुचेता को लेकर।

जगदीश—माँ !

मा—हाँ, कल उसे लेकर कलकत्ते जाओ। बहू ने जो कहा वह झूठ

गया हूँ। ये इस प्रकार के अनधिकार कारोबार करने का तुम औरतों को क्या अधिकार है ? ज़रा ठहर जातीं तो क्या हो जाता ?

मा—अतिथि घर आया था।

जगदीश—हाँ, हाँ, जानता हूँ मैं। अतिथि घर आया था तो उसे बिठातीं, गुड़ पानी देतीं और कहतीं—दरवाजे की आड़ खड़ी होकर कहतीं—कि गृह-स्वामी के आने तक उनकी प्रतीक्षा कीजिए। ऐसा कौनसा प्रलय होने लगा था जो बिना मेरा इंतजार किए एक पराए आदमी से चर्चा करने बैठीं तुम बंगाली घर की औरतें ? पिताजी के चल बसने से घर उजड़ तो नहीं गया था ! मा तुम तो यहाँ थीं !

मा—मैंने कहा तो था उससे चले जाने के लिए।

जगदीश—और उसने रोक लिया ! और वह उससे बातचीत करती रही !—और तुम घर की बड़ी-बूढ़ी होकर—तुम चुपचाप खड़ी सुनती रहीं ! क्या कह रही थी यह इससे ?

अजित—(**आगे बढ़कर उसके पैर छूकर नमस्कार करता है**) क्षमा कीजिए। भूल हुई मुझ से, मैं यह नहीं जानता था।

जगदीश—देख क्या रही हो ? जाओ सब लोग अन्दर (**सुचेता और अबला अन्दर जाती हैं**) और तुम किस लिए खड़ी हो यहाँ मा ?

मा—घर के स्वामी तुम हो तब भी मैं तुम्हारी माँ हूँ। गंगुली घर की रीति-रस्म मैं तुमसे अधिक जानती हूँ। यह अतिथि है। इसका अपमान नहीं होना चाहिए। समझे ? इसका अपमान नहीं होना चाहिए। अपने बुजुर्गों ने बताया है कि अतिथि देवता होता है। तुम आपे से बाहर हो रहे हो इसलिए इसका अपमान करोगे। मुझे वह सहन नहीं होगा, जो कुछ तुम्हें इससे कहना है मेरे सामने कहो।

जगदीश—मुझे जो कुछ कहना है वह तुम्हारे सामने नहीं कहा जा सकता।

मा—जो मेरे सामने नहीं कहा जा सकता वह तुम कहो ही नहीं तो अच्छा है। तुम्हारे पिताजी होते तो जो वह कहते उसकी कल्पना मैं कर

सकती हूँ—तुम नहीं । घर की रीति में तुम से अधिक जानती हूँ । फिर कहती हूँ घर आए अतिथि का अपमान नहीं होना चाहिए । इस समय तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने पर नहीं है । तुम कुछ असंगत बोलोगे—जो न कहना चाहिए कह बैठोगे और जब बाद में मुझे पता चलेगा तो लज्जा से गड़ जाऊँगी मैं । जो कहना था वह मैंने इससे कह दिया है । यह भी विचारा जाने लगा है—

अजित—जी हाँ, मैं जा रहा हूँ। लेकिन माजी अभी जो उन्होंने कहा—उसके बारे में क्या विचार है आपका ?

मा—किस के बारे में ?

अजित—अभी जो उन्होंने कहा था कि सुचेता को साथ ले जाइये ।

जगदीश—किसने कहा ? किसने कहा सुचेता को साथ ले जाने के लिए ? कहाँ ले जाने के लिए कहा ?

मा—ज़रा ठहरो । उसे बोलने दो, तुम्हारी पत्नी ने कहा है उससे और मैं भी वही सोचती हूँ !

जगदीश—क्या सोचती हो ? न कभी देखा, न जाना, पता नहीं है कौन । आया—और कहता है सुचेता को ले जाता हूँ मैं !—

मा—उसने यह नहीं कहा, यह कह रही थी तुम्हारी बीवी । उसे क्या कहना है यह मैं अब उससे पूछती हूँ, कहते हो है कौन ! है कौन ? सुचेता उसे पहचानती है—

जगदीश—कैसे ?

मा—अभी उसने नहीं बताया कि तुम्हारे मामा से रिश्ता है उसका, पड़ोस पड़ोस में रहते हैं दोनों । बहू ने जो कहा वह झूठ नहीं है मैं भी अब वही सोच रही हूँ, क्यों जी—क्या नाम बताया था अपना—अजित ही न ? कहाँ रक्खा है तुमने अपना सामान ? तुम यहीं आ जाओ । आज के दिन यहाँ रहो और कल चले जाना कलकत्ते सुचेता को लेकर ।

जगदीश—माँ !

मा—हाँ, कल उसे लेकर कलकत्ते जाओ । बहू ने जो कहा वह झूठ

नहीं है। वह तो सुखी हो सकेगी। अब कुछ न कहो बेटा अजित, इसी समय जाओ और अपना समान ले आओ।

अजित—जैसी आपकी आज्ञा। (जाता है)

[क्षण भर परेशानी में चहल कदमी करता हुआ जगदीश एकदम मा के सामने आकर खड़ा हो जाता है।]

जगदीश—तो तुम सुचेता को उसके साथ भेजने वाली हो?

मा—हाँ।

जगदीश—वह उसकी मँगनी करने आया था!

मा—हाँ।

जगदीश—फिर भी तुम उसे उसके साथ भेजोगी?

मा—हाँ।

जगदीश—आजकल के लड़के हैं ये—और कलकत्ते के, कहीं और ले जायगा उसे।

मा—घर है उसका कलकत्ते में, और समझ लो और कहीं ले गया—(क्षण भर रुककर) ले गया तो उससे क्या बिगड़ता है?

जगदीश—यह तुम कह रही हो माँ?

मा—हाँ, मैं कह रही हूँ। पंजाब के दंगाखोरों द्वारा घर से घसीट-कर ले जाने की अपेक्षा क्या यह अधिक बुरा होगा? (वह कुछ नहीं कहता) अब बोलते क्यों नहीं? बताओ न, तुम्हारे समक्ष इसका हाथ पकड़कर ले गए तो—(वह आँखें मींचकर कानों को हाथों से बन्द करता है) नहीं सुना जाता? यह सब अब देखना पड़ेगा, केवल सुनकर घबरा रहे हो? (दरवाजे के पास जाकर) सुचेता, इधर आओ। (सुचेता बाहर आती है) सुनती हो दीदी, कल तुम्हारा अजित के साथ कलकत्ते जाना निश्चित किया है मैंने।

सुचेता—क्यों?

मा—तुम्हारी भाभी का कहना मुझे जँचा है इसलिए नहीं—मैं तुम्हें भेज रही हूँ, इसलिए कि तुम सुरक्षित रह सको।

सुचेता—और तुम और भाभी भी आओगी मेरे साथ ?

मा—इसी घर में मरना है मुझे। यह घर का मालिक—वह उसकी पत्नी—इन दोनों को भी यहाँ रहने के सिवा और कोई चारा नहीं है।

सुचेता—और मैं कोई भी नहीं हूँ इस घर की ?

मा—तुम भी इस घर की हो—लेकिन मेहमान हो—जन्म से ही मेहमान, कभी न कभी तुम्हें अपना घर खोजना ही होगा। अब जहाँ जा रही हो वहीं की होकर रह सको तो रहो। तब तक यहाँ क्या होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। क्या पता इस घर का नाम-निशान भी मिट जाय !

जगदीश—ऐसा अशुभ क्यों बोलती हो मा ? अपना गाँव उनमें से नहीं है। करीम चाचा जैसे लोग हमारे ऊपर स्नेह की पाँखों का आच्छादन किए हैं हमारी रक्षा के लिए।

मा—अब हमारे चल बसने के दिन आ गए हैं। करीम चाचा हों चाहे मैं—वैसे करीम चाचा के बराबर आयु नहीं है मेरी—लेकिन जिस समय माथे का सिन्दूर पुछ गया उसी समय बुढ़ापा आ गया मुझ पर। कौन सुनेगा हम लोगों की अब ? तुम कहाँ सुनते हो मेरी जो करीम चाचा के बच्चे उनका कहना मानेंगे ?

जगदीश—ऐसा क्यों कहती हो मा ? पर भली बात है तो तुम्हारा कहना मुझे जँचता है। यह मैं स्वीकार करता हूँ।

मा—क्या ऐसा ही नहीं है कुछ कुछ ? नए और पुराने का झगड़ा चल रहा है। आज तक चलता आया पुरानापन पुराने लोगों को भाता है, पर नए लोगों को नया राज चाहिए; फिर भला दोनों एक मत कैसे हो सकते हैं ? छोड़ो उसे, इसे भेजना है न अजित के साथ ?

जगदीश—मैं समझता हूँ करीम चाचा को एक बार पूछ लिया जाय। वैसे मुझे यह बात नहीं जँचती। नई पीढ़ी का होते हुए भी मेरे विचार पुराने हैं। सनातन संस्कृति में मैं बढ़ा हूँ इसलिए ये तमाशा मुझे पसन्द नहीं।

मा—नई-पुरानी संस्कृति का यह प्रश्न नहीं है जगदीश, यदि गुंजाइश होती तो अभी-अभी यहीं पर इसका विवाह कर देती मैं। एक क्षण का भी भरोसा नहीं है मुझे। चलो दीदी, तुम्हारे जाने की तैयारी कर लेने दो मुझे।

सुचेता—लेकिन मा !

मा—लड़की की जात ने कहा मानना चाहिए।

[वह सुचेता का हाथ पकड़कर जबर्दस्ती अन्दर ले जाने के लिए दरवाजे के पास जाती है और वहाँ अबला को खड़ा देखकर ठिठकती है। फिर सुचेता को लेकर भीतर जाती है। जगदीश जाकर तख्त पर बैठ जाता है और दोनों हाथों से सिर थामे कोहनियाँ पलथी पर टेके बैठता है। अबला सिर पर का पल्ला और भी आगे खींचकर बड़े अदब के साथ उसके सामने आकर खड़ी हो जाती है। उसे देखते ही वह चौंकता है।]

जगदीश—(खिसियाकर) अब तुम आ गई ! तुम्हीं ने यह सारी मुसीबत खड़ी की है। तुम्हें क्या करना था इस झमेले से ? मा है—घर का मालिक मैं हूँ।

अबला—हैं न ? आप घर के स्वामी हैं—मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ। आधे की तो मैं मालकिन हुई ना ? उस आधे की मिल्कियत के आधार पर जो कुछ मैंने कहा है ठीक विचार करके कहा है। प्रसंग बड़ा कठिन है। चारों ओर से जो समाचार आ रहे हैं वे सुने हैं न आपने ? जवान लड़कियों पर न जाने किस समय क्या प्रसंग आ जाय ?

जगदीश—और तुम कब से बुड्ढी हो गई ? तुम भी तो जवान ही हो ! यदि वैसा ही प्रसंग आया तो तुम्हें कौन छोड़ेगा ?

अबला—पर आप जो हैं ?

जगदीश—हाँ, मैं हूँ—पर मैं तुम अकेली के लिए ही नहीं हूँ ! क्या तुम यह कहना चाहती हो कि बहन की रक्षा करने में पत्नी का प्रेम आड़ा आयगा ? केवल तुम्हीं को मैं बचाऊँगा और बहन को भेड़िए के मुँह में

छोड़ दूँगा, क्या यही तुम्हारा मतलब है ?

अवला—रक्षा तो सभी की करनी है लेकिन यदि एक व्यक्ति कम हो जाय—किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाय—तो कुछ हर्ज है ?

जगदीश—फिर तुम भी जाओ उसके साथ !

अवला—आपके चरण-कमलों का आधार छोड़कर भला मैं कहीं जा सकती हूँ ? बंगाली लड़की हूँ। मरना होगा तो पति के चरणों के पास ही मरूँगी । दीदी की बात और है। मा किसी भी प्रकार घर छोड़कर नहीं जायँगी । यदि जाना ही है तो हम सब लोग ही क्यों न जायँ कलकत्ता ?

जगदीश—घर को ताला लगाकर ? मेरी रैयत क्या कहेगी ? मैं जमींदार हूँ यहाँ का, रैयत को छोड़कर आज यदि मैं कलकत्ता भाग गया तो कल यहाँ मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रहूँगा।

अवला—इसी लिए कह रही हूँ कि दीदी को जाने दीजिए कलकत्ता।

जगदीश—लेकिन किस के साथ ? न जाने कौन उठल्लू यहाँ आता है, अपनी पहचान जताता है, सगाई का प्रस्ताव रखता है, और तुम कहती हो मैं उसके साथ अपनी वहन को विदा कर दूँ ! इन्सानियत है यह ?

अवला—उसका विश्वास न करें आप लेकिन जो प्रत्यक्ष आपकी वहन वता रही है उस पर तो विश्वास होना चाहिए आपका। वह अकारण झूठ क्यों वताएगी ?

जगदीश—कलकत्ते के वातावरण में पली हुई इस लड़की पर मेरा विश्वास नहीं है। प्रेम के जाल में फँसी हुई कलकत्ते की लड़की अपने स्वार्थ के लिए चाहे जो झूठ वोल सकती है।

अवला—आपकी वहन होकर भी ?

जगदीश—हाँ, हाँ—मेरी वहन भी, वहन हुई तो क्या हुआ ? आज वह कितने सालों से कलकत्ते में है, चौमोहानी के इस गंगुली घराने के कुलीन रस्मो-रिवाज कहाँ कूट-कूट कर भरे हैं उसमें ? वीच वाजार में पल्ले से सिर ढके विना चाहे जिसे ठेलकर चलने वाली ये कलकत्ते की मेमें—

ना, ना, मुझे नहीं जँचता यह । मुझे विश्वास नहीं ऐसी लड़की पर ।

अबला—पर आपकी बहन ऐसी है यह किसने कहा आप से ? आप कभी कलकत्ते गए थे क्या ? वह वहाँ किस प्रकार बरतती है आपने देखा था ? आपके मामा बाबू ने कभी शिकायत की थी उसके बारे में ?

जगदीश—मामा बाबू !—वे भी वैसे ही हैं । अधूरे ब्रह्मसमाजी हैं वे । दीक्षा नहीं ली इतना ही; पर आचार-विचार सब म्लेच्छों जैसे हैं ! न न, मा चाहे जो कहे पर मैं अपनी बहन को एक अपरिचित व्यक्ति के साथ नहीं भेजूंगा ।

अबला—तो आप स्वयँ उसे पहुँचा आइए ।

जगदीश—इस समय ? इस दावानल में जो अब द्वार तक पहुँचना ही चाहता है, ऐसे समय तुम सब को छोड़कर मैं इसे लेकर कलकत्ता जाऊँ ? नहीं—नहीं, यह न हो सकेगा ।

अबला—लेकिन मा तो उन्हें भेजने की तैयारी करने में लगी हैं। अभी-अभी तो उन्होंने कहा था ।

जगदीश—नहीं, नहीं !—विचित्र बातें भर दीं तुमने मा के मन में। यह सारा दोष तुम्हारा ही है । तुम भी वैसी ही हो। कलकत्ते में रही हो न ! वह सब कुछ नहीं—मैं अभी जाकर मा से कहता हूँ **(अन्दर जाता है, अबला सिर पर का पल्ला तनिक पीछे सरकाकर खिन्न-मना होकर स्तब्ध खड़ी रहती है। इतने में राखाल प्रवेश करता है । यह जगदीश का छोटा भाई है। उमर बीस के लगभग है। हमेशा प्रसन्न और हँसमुख । भाभी से उसे स्नेह है । भाभी को अकेली ही स्तब्ध खड़ी देखकर वह आगे आता है)**

राखाल—भाभी ! **(वह चौंकती है और अनजाने ही पल्ला आगे सरकाती हुई उसे देखकर पीछे सरकाती है)** ऐसी काठ-सी क्यों खड़ी हो भाभी ? भैया कहाँ गए ?

अबला—भीतर गए हैं । मा ने तय किया है कि तुम्हारी दीदी को आज कलकत्ते भेजना है पर वह तुम्हारे भैया को पसन्द नहीं ।

राखाल—इसलिए तुम बहस कर रही थीं भैया के साथ—है न ?

और दादा न माने।—किसके साथ जा रही है वह कलकत्ता ?

[बैग और बिस्तर लिये अजित अन्दर आता है। उन दोनों को देख कर चौंकता है और दरवाजे में ही ठिठककर खड़ा रहता है। उसकी दृष्टि उन दोनों की ओर जाती है। राखाल चकित होता है।]

अबला—इनके साथ।

राखाल—ये कौन हैं ?

अबला—(अजित से) आइये न अन्दर। (राखाल से) अब तुम्हीं पूछ लो इनसे।

अजित—(आगे आकर हाथ का सामान नीचे रखकर) आपने कहा इसलिए आया तो हूँ पर मन कुछ घबराया-सा हो रहा है। रास्ते से आ रहा था पर प्रत्येक आदमी को संदिग्ध दृष्टि से देख रहा था। कौन कब पीछे से आकर वार करेगा इसका डर बराबर बना हुआ था, (क्षण भर स्तब्ध रहता है।) यहाँ से धर्मशाला गया तो वहाँ पर लाश पड़ी हुई थी—ठीक मेरे बिस्तर के पास। यह देखिए (होलडाल दिखा कर) खून के दाग, यहाँ आया था इसलिए बच गया नहीं तो इसके बदले मैं ही मारा जाता। (घबराकर रोमांचित होता है और पास वाले तख्त पर एकदम बैठ जाता है। राखाल उसके पास जाता है और उसके कन्धे पर हाथ रखता है। अजित चौंकता है)

राखाल—डरने की आवश्यकता नहीं। यहाँ छुरा नहीं है मेरे हाथ में। इसी घर का रहने वाला हूँ मैं। इतने डरे क्यों ? यह घर है—धर्मशाला नहीं (देखकर) शायद यह आपका सामान है ? सुरक्षित रहा वहाँ पर ? चुराकर तो नहीं ले गया कोई ? जी ! तो अब आप कलकत्ता जाइएगा—और आपके साथ सुचेता भी जायगी—(अजित पागल-सा उसकी ओर देखता रहता है)—मुझे भी ले जाइयेगा अपने साथ ?

अजित—कहाँ ?

राखाल—कलकत्ता, यह जो मुसीबत खड़ी हो गई है यहाँ। इसलिए कलकत्ता जाना ठीक रहेगा। हाँ—पर आप क्यों ले जाइयेगा मुझे अपने

साथ ! मैं सुचेता तो हूँ नहीं !

अबला—परदेसी आदमी—फिर अतिथि बनकर आया हुआ और ऐसे कठिन समय में ! क्यों हँसी उड़ा रहे हो इनकी ?

अजित—जी नहीं, कहने दीजिये इन्हें, कौन हैं यह ?

राखाल—मैं कौन हूँ यह जान लेने के बाद ले जाइयेगा मुझे अपने साथ ? सुचेता का भाई हूँ मैं ।

अजित—नमस्ते ।

राखाल—नमस्ते । अपना नाम नहीं बताया आपने ।

अजित—मुझे अजित भट्टाचार्य कहते हैं । आपके मामाबाबू के पड़ोस में रहता हूँ ।

राखाल—तभी !

अबला—(डाँटकर) राखाल !

राखाल—क्या हुआ ? यों डाँटती क्यों हो ? क्या कहा है मैंने ? कुछ शब्द भी निकाले मुंह से ? इस तरह बड़प्पन न दिखाओ मेरे सामने ! ऐसी कितनी बड़ी हो मुझ से ? अधिक से अधिक साल-डेढ़ साल···

अबला—नहीं, तीन साल ।

राखाल—अच्छा, अच्छा, तीन साल ही सही । तीन साल बड़ा होना कोई विशेष बात नहीं (अजित से) क्यों साहब आपका क्या विचार है भट्टाचार्य जी ?

अजित—बड़े का मतलब है बड़ा; इसमें उम्र का प्रश्न ही नहीं उठता । बड़े भाई की पत्नी चाहे अपने से छोटी ही क्यों न हो, बड़ी ही कहलाएगी ।

राखाल—सुनो भाभी, कलकत्ते का आदमी बोल रहा है ! (अबला से) तो फिर कल यह सुचेता को ले जायँगे ! या आज ही ? और यों ही साथ में जा रहे हैं, या...

अबला—मँगनी करने के लिए ही आए थे यह । मैंने यही इनसे कहा ।

राखाल—क्या ? यह कि विवाह करके ले जाओ ?

अवला—ऊँ हूँ, वहाँ ले जाकर शादी कर लो।

राखाल—वह और अच्छा रहेगा। विवाह का खर्च अपने ऊपर नहीं पड़ेगा। यहाँ शादी हो तो सारे गाँव को आमंत्रित करना पड़ेगा, और फिर यह गड़वड़। बुलाने पर भी कोई आएगा इसमें संदेह है। समझे न भट्टाचार्यजी, आप वहीं ले जाकर शादी कीजिए। हमारे मामा वावू करेंगे कन्यादान।

अवला—ठीक यही मैंने भी कहा था!

राखाल—देखा, तुम्हारा और मेरा मत वरावर मेल खाता है! तुम्हारी नहीं पटती तो भैया से—और भैया तुम्हारे पति हैं! मैं समझता हूँ जिनके विचार एक से नहीं होते ऐसे ही दो व्यक्तियों को ढूंढ़कर उनकी शादी कर दी जाती है! (अजित से) आप अपनी कहिए साहव, आपके विचार मेल खाते हैं हमारी सुचेता से? (अजित उसके मुख की ओर देखता मात्र है) इस प्रकार क्या देख रहे हैं? मिलते हैं आप दोनों के मत?

अजित—इस प्रकार वातों की तुलना करके हमने नहीं देखा।

अवला—इसका पता पहले नहीं चलता राखाल। यह वात विवाह के वाद पता लगती है। विवाह के पहले भला कौन विचार मिलाकर देखता है! उस समय विचारों का ध्यान किसे रहता है? और विचार न मिलने से घर नहीं वसता ऐसी वात तो नहीं! जव मैं इस घर में आई थी तो तेरह साल की थी। उस समय कहाँ थे मेरे अपने विचार? अव दस साल हो गए हैं तो अपना मत भी देने लगी हूँ—मेल नहीं खाता कभी भी, लेकिन घर तो वसा हुआ है हम दोनों का?

राखाल—सुख समाधान से?

अवला—देख ही रहे हो तुम। मतों के मेल न खाने में ही मज़ा है। हम दोनों झगड़ते हैं—वरावर झगड़ते हैं, लेकिन उससे विगड़ा है कुछ?

अजित—यह अपना सामान मैं यहीं रहने दूँ?

अबला—ओह क्या हो गया है मुझे ! तुम भी ऐसे ही हो राखाल ! अतिथि घर आया है। उसका स्वागत-सत्कार करने का काम तुम्हारा है—और तुम केवल बक बक कर रहे हो। उठाओ वह उनका सामान और भीतर जाकर रक्खो। आज ही आज ठहरेंगे इसलिए अपने ही कमरे में ले जाओ उन्हें।

[करीम चाचा आते हैं। उनके आते ही अबला पल्ला आगे खींचकर दरवाजे के पास जाती है। करीम चाचा सत्तर साल पार किया हुआ वृद्ध है। उसका चेहरा किसी ऋषि-सा है। शुद्ध सात्विक वृत्ति, कभी भी क्रोध न करने वाला, हमेशा स्नेहमय और वात्सल्य से बात करने वाला।]

करीम चाचा—जगदीश कहाँ है ? यह मेहमान कौन है ?

राखाल—**(बैग तथा होलडाल उठाकर)** पहले यह सामान रख आता हूँ अन्दर। यह कलकत्ते से आए हैं सुचेता को लेजाने के लिए **(कहता हुआ जाता है।)**

करीम—सुचेता को ले जाने के लिए ?

अबला—मामा बाबू के यहाँ से आए हैं। हम ही ने कहा कि सुचेता को भी ले जाइये।

करीम—ठीक, ठीक ! क्यों वह यहाँ निरर्थक आई ? देखता हूँ यहाँ यह दावानल बड़े जोर से भड़केगा। आज तीन-चार आदमियों को चाकू भोंके गये हैं। क्या हो रहा है यह ! पहले क्या देखा था और आज क्या देख रहे हैं ! जान नहीं, पहिचान नहीं, बैर नहीं, झगड़ा नहीं लेकिन फिर भी यूँ ही चलते-चलते एक व्यक्ति दूसरे की पीठ में छुरा भोंक देता है ! क्या कहा जाय इस प्रवृत्ति को ?—जगदीश कहाँ गया है ?

अबला—भेजती हूँ। **(जाती है)**

करीम—**(अजित से)** कलकत्ते में तो ऐसा कुछ नहीं हो रहा है न ? कहते हैं कुछ दिन पहले दंगा हुआ था पर अब शान्त हो गया है। किस लिए हो रहा है यह खून-खच्चर ?

अजित—यह आप कह रहे हैं ? आपके ही भाइयों ने तो शुरू

किया है यह सब ?

करीम—मेरे भाइयों ने नहीं—पूर्व बंगाल के भाइयों ने नहीं—यह अत्याचार शुरू किया है मेरे उधर के उन जात-भाइयों ने। उधर का विष क्यों ला रहे हैं यहाँ ? ग़रीबों का मुल्क है यह ! पैंतीस लाख लोग भूखों मर गए। उस समय मेरे ही भाईवन्द शासन चला रहे थे इस बंगाल का। वे जो मर गए वे सभी तुम्हारे भाईबंद नहीं थे। जो मरे उनमें से बहुत से मेरे ही भाईबंद थे—हमारी ही संतान थे वे। और यह जो इस प्रकार प्राण ले रहे हैं वे भी मेरे ही भाईबंद हैं और हमारी ही संतान हैं ! अकाल में जो इतने लोग मर गए क्या उससे इनका समाधान नहीं हुआ ? अब इस प्रकार रक्तपात करना चाहते हैं। अभी अभी देखा—(**आँखें बन्द करके सिर हिलाता है।**)

अजित—मैंने भी देखा—मेरे सामान के पास ही लाश पड़ी थी किसी की। उसके रक्त के छींटे पड़े थे मेरे होलडाल पर; और वह होलडाल हाथ में लिये हुए मैं यहाँ आया—वह खून बराबर मेरी आँखों में चुभ रहा था—और कोई भी चीज़ मेरी आँखें नहीं देख पा रही थीं। अब भी वही मुर्दा दिखाई दे रहा है। मरने के बाद भी डरा हुआ दिखाई दे रहा था। न जाने कौन था बिचारा ! जिसने उसकी जान ली पता नहीं वह भी जानता था या नहीं ! (**जगदीश छड़ी के वक्रभाग से अजित का होलडाल लटकाए चिल्लाता हुआ आता है। उसके पीछे राखाल आता है।**)

जगदीश—फेंक दो—यह अमंगल चिन्ह फेंक दो मेरे घर के बाहर। यह जिन्दा आदमी का रक्त नहीं चाहिए मेरे घर में। (**होलडाल बाहर फेंक देता है।**)

राखाल—मेहमान का है न वह बिस्तर ?

जगदीश—उस मेहमान को भी फेंक दो बाहर। (**मा आती है।**)

मा—क्या कहा जगदीश ?

जगदीश—मैंने कहा, उस मेहमान को भी उठाकर फेंक दो बाहर।

मा—क्या भेड़िये के मुंह में देना चाहते हो घर आए मेहमान को ?

जगदीश—यह असगुन नहीं चाहिए मेरे घर में। खून ! मनुष्य का खून !

मा—मनुष्य का रक्त ! कल इस घर में भी मनुष्य का रक्त गिरा तो क्या करोगे ?

जगदीश—धो डालूंगा सारा घर।

मा—और घर ही के लोगों का रक्त गिरा तो ?

करीम—(अब तक पत्थर के समान अचल खड़ा देखता हुआ) जगदीश ! मैं यहाँ हूँ। देखा नहीं मुझे ? भूल गए ? उधर देखो। वह तसवीर देखो। वह जो वहाँ बैठा है मेरे बराबर—वह मेरा छोटा भाई है। वह क्या सोचेगा इसका विचार किया था तुमने ? मेहमान का अपमान करते समय देखा था तुमने उस तसवीर की ओर ? मैं यहाँ था—मुझे भी तुमने नहीं देखा। कहते हैं क्रोध अंधा होता है वह बात ठीक है। याद है तुम्हें तुम्हारे पिता कहा करते थे कि क्रोध जल्लाद होता है। क्या वह कभी करते थे इस प्रकार अतिथि का अपमान ? उठाओ वह बिस्तर और घर में ले जाकर रक्खो।

[जगदीश अकड़ा-सा खड़ा रहता है। राखाल वह बिस्तर उठाने के लिए बाहर जाने लगता है]

करीम—तू दूर हट। जगदीश ! सुना नहीं तुमने ? मेरा भी अपमान करना चाहते हो तुम ? मेरे घर के वे बच्चे अब मुझे कुछ नहीं समझते, विश्वास था तो इस घर के बच्चों पर। खून से नहीं तो दिल से भाई-भाई थे हम। भूल गए तुम वह सब ? (जगदीश पूर्ववत् अकड़ा खड़ा हुआ है) मेरा यहाँ का अधिकार क्या समाप्त हो गया भाभी ?

मा—जगदीश, तुम सुन रहे हो या नहीं ? (अबला सुचेता सहित एकदम अन्दर से आती है और तत्काल बाहर जाकर बिस्तर ले आती है)

करीम—(उसे आता देखकर हाथ से संकेत करके उसे मना करता है) तुम क्यों लाईं यह ?

अवला—मैं उनकी अर्धांगिनी हूँ। उनका आधा काम कर रही हूँ।

जगदीश—(**उवलकर**) कोई न करे मेरा काम, अपना काम मैं स्वयं कर लूंगा। इस घर की पवित्र छत के नीचे यह पापी रक्त नहीं रहना चाहिए। फेंको उसे वाहर—(**वह करीम चाचा की ओर देखती है; फिर मा की ओर देखती है। वह विस्तर उसके हाथ से छीन लेता है और अजित के हाथ में पकड़ा देता है**) लो अपना सामान और रास्ता नापो अपना। सुलच्छनी आदमी ! तुम्हारे घर में पैर रखते ही गाँव में खून वहा और घर में कलह उत्पन्न हो गया। चले जाओ यहाँ से।

मा—सुचेता, तुम भी जाओ उनके साथ।

जगदीश—नहीं, मैं उसे न जाने दूंगा। मैं इस घर का मालिक हूँ। मैं जो चाहूँगा वही होगा।

करीम—भाभी, तुम्हारा और मेरा अधिकार अव इस घर पर न रहा। तुम्हारे पति को मैंने वचन दिया था, उस वचन का पालन करने की मैंने भरसक चेष्टा की। वस—खत्म ! (**अजित से**) चलो वेटा, मेरे साथ। अपने घर चलने के लिए कहता पर तुम मेरे घर नहीं आओगे। और यदि तुम हाँ भी कहो तो भी मैं तुम्हें अपने घर कैसे ले जा सकता हूँ ? मेरे वच्चों ने भी इसी प्रकार आँखें तरेरली हैं। चलो मेरे साथ स्टेशन पर। (**वहुत धीमे-धीमे उसे साथ लिये वह वाहर जाता है**)

मा—जगदीश !

[**जगदीश एकदम सिसकने लगता है और फिर एकदम तख्त पर बैठता है।**]

[**पर्दा गिरता है**]

दूसरा अंक

[स्थान—प्रथम अंक जैसा ही। जगदीश जल्दी-जल्दी चहल कदमी कर रहा है। इतने में राखाल आता है। उसे देखकर वह रुक जाता है]

जगदीश—क्या खबर है ?

राखाल—बड़ी भयंकर खबर है। अभी उन लोगों को यहाँ तक आने में बहुत देर लगेगी। अपनी रैयत ने नाले के पुल तोड़ डाले हैं—

जगदीश—तब ठीक है। अब उनके आने का डर नहीं।

राखाल—टूटे हुए पुल दुबारा बनाए जा सकते हैं भैया ! और यही कर रहे हैं वे। उसी तैयारी से आए हैं वे लोग।

जगदीश—ठीक, और उन्हीं के भाईबन्द हैं हमारे पड़ोसी—वे भी उनकी सहायता करेंगे।

राखाल—जी हाँ, वह आशंका भी है। आशंका क्यों, वही होने वाला है। धर्म के नाम पर आग सुलगने पर नास्तिक को भी त्वेष आता है।

जगदीश—मुझसे भूल हुई। मुझे उसका कहा मान लेना चाहिए था—सभी को भेज देना चाहिए था कलकत्ता—

राखाल—और आप अकेले रहने वाले थे यहाँ ?

जगदीश—अकेला क्यों ? घर में नौकर-चाकर हैं, गाँव की रैयत है।

राखाल—मैं न जाता।

जगदीश—हाँ, तुम न जाते—तुम भी यहीं रहते।

राखाल—और हम दोनों के यहाँ रहते हुए क्या मा जाती कलकत्ता ?

जगदीश—हाँ, वह भी रह जाती यहीं—पर कम-से-कम वे दोनों तो चली जातीं।

राखाल—मा रह जाती तो वे दोनों कब जाने लगी थीं ?

जगदीश—हाँ, यह भी ठीक है। 'जाओ' कहकर भी कोई न जाता। कुछ नहीं सूझ रहा है। कहीं कोई भी रक्षा का साधन नहीं दिखाई देता। यह घर कोई किला तो है नहीं।

राखाल—और किला होता भी तो क्या होता ? हम लोग हैं एकदम निशस्त्र। लेकिन उन लोगों के पास सब प्रकार के शस्त्र हैं। न जाने कहाँ से लाए हैं ? छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष, युवक-बूढ़ा कुछ नहीं देखते। अविराम कत्ल कर रहे हैं चारों ओर। खुले आम आग लगा रहे हैं घरों को। क्या नतीजा निकलेगा इससे ?

जगदीश—अब जाना चाहें तो भी नहीं जा सकते। चारों ओर से रास्ता रोके हुए हैं यह शैतान। केवल प्राण लेते होते तो हम सब एक साथ जा सकते थे, लेकिन वे तो औरतों की इज्जत लेते हैं—दिन-दहाड़े भ्रष्ट करते हैं उन्हें—शर्म-हया सब छोड़कर। कौन शैतान घुस पड़ा है उनके सिर में ? **(दोनों हाथों से कसकर सिर पकड़ता है और तख्त पर जाकर बैठता है। राखाल अकड़कर खड़ा है। वह गुस्से से परिपूर्ण है। जैसे उससे की गई बातों का उत्तर वह महज अपनी शून्य दृष्टि से दे रहा है।)**

राखाल—विध्वंस हो रहा है ! इस विध्वंस का प्रतिकार कौन करे ? पूर्वजों के पराक्रम की चर्चा हम रोज करते हैं। बड़े जयजयकार करते रहते हैं पुराने वीरों के नामों का—**(वह यह कह रहा है तभी मा बाहर आकर एक ओर खड़ी हो जाती है। अबला और सुचेता दरवाजे के पास खड़ी हैं। उन दोनों का उनकी ओर ध्यान नहीं जाता)** ये भी जयजयकार करते हैं—पर देवताओं का नाम लेकर—धर्म का नाम लेकर ! धर्म के लिए बलिदान करने के लिए कह रहे हैं। और इधर हम भी नाम लेते हैं देवताओं का—धर्म का नाम लेते हैं। देवताओं का

नाम लेते हैं इसलिए कि वे आकर हमें इस संकट से बचाएँ । धर्म का नाम लेते हैं—किस लिए धर्म का नाम लेते हैं हम ? कौन बताएगा मुझे ? किस लिए धर्म का नाम लेते हैं हम ?

मा—(**आगे बढ़कर**) जीवित रहने के लिए ।

राखाल—मा !

जगदीश—मा !

मा—स्वयं जीने के लिए और दूसरों के जिन्दा रहने के लिए नाम लेते हैं हम धर्म का ।

जगदीश—किन दूसरों के जिन्दा रहने के लिए ?

मा—अपने अतिरिक्त और जितने भी दूसरे हैं उन सब के जिन्दा रहने के लिए ।

राखाल—दुश्मनों के भी ?

मा—हाँ, सब के लिए—सब के लिए ! जो दूसरों को जीवित रखने की भावना रखता है वह स्वयं मर जाने पर भी जीवित रहता है । सभी को जीवित रखना चाहिए। स्वामी रामकृष्ण परमहंस एक किस्सा सुनाया करते थे—तुम्हीं ने तो मुझे पढ़कर सुनाया था जगदीश ? एक साधू को किसी ने पीटा। उसे मूर्छित पड़ा देखकर किसी ने उसे होश में लाकर पानी पिलाया । किसी दूसरे ने उससे पूछा कि तुम्हें किसने मारा । उस साधू ने क्या उत्तर दिया याद है तुम्हें ?

जगदीश—जिसने मारा, उसी ने मुंह में पानी डाला, यह कहा था उस साधू ने (ठहरकर) वह साधू था; मुझ जैसा दुनियादार नहीं । घर-बार, बीवी-बच्चे, खेती-बाड़ी, जमीन-जायदाद—और रैयत भी—इन सबके संरक्षण का भार नहीं था उसके मत्थे,—इसलिए साधू ने कही थी वह बात ।

मा—सभी के संरक्षण का भार था उसके मत्थे । उसका अपना कुछ था ही नहीं—इसलिए सभी उसके थे । एक ही कुटुम्ब की नहीं, एक ही घर की नहीं, एक ही जमींदारी की नहीं; सभी कुटुम्ब—सभी जमींदारियों

की रक्षा का भार उसके मत्थे था। इसलिए उसने शत्रु और मित्र में भेद नहीं समझा। जो केवल अपना भार देखता है वह स्वयं अपनी रक्षा तो कर ही नहीं पाता लेकिन साथ ही दूसरों के भी नाश का कारण बन जाता है।

राखाल—(चौंककर) क्या कहा माँ ?

मा—ध्यान कहाँ था तुम्हारा ?

राखाल—मेरा ध्यान कहीं भी नहीं था। मैं कहीं हवा में उड़ रहा था। जलते हुए गाँव दिखाई पड़ रहे थे मुझे नज़र के सामने; उजड़े हुए मकान देखकर, जिन्दा बचे हुए मनुष्य भटकते हुए दिखाई दे रहे थे मुझे।

जगदीश—(आवेश से) और यह सब अनर्थ करने वाले राक्षस नहीं दिखाई दे रहे थे तुम्हें ?

राखाल—विध्वंस करके विध्वंसक क्या रहने लगे वहाँ ! (मा के पास जाकर) क्या कहा तुमने मा ? जो केवल अपना स्वार्थ देखता है वह स्वयं अपना नाश करता है और साथ ही दूसरों का भी—यही तो कहा न तुमने मा ? यही हो रहा है हमारे पूर्व बंगाल में। प्रत्येक व्यक्ति अपना भर सोच रहा है। मैं स्वयं बच जाऊँ बस, दूसरा मरे या जीये मुझे उससे क्या मतलब ! अब तो हमारी रक्षा करना केवल ईश्वर के ही हाथ में है।

अबला—(दरवाजे की ओट से सामने आकर) किस के ईश्वर के हाथ ?

जगदीश—तुम अन्दर जाओ पहले।

अबला—(बड़े अदब से सिर पर का पल्ला आगे सरकाकर) पहले मुझे बताइये कौन से ईश्वर ने हमारी रक्षा का भार सँभाला है ?

जगदीश—उसी एक—सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ, सर्वभूतों में निवास करने वाले जगन्नियंता परमेश्वर ने।

राखाल—वे भी यही कहते हैं। ईश्वर एक ही है !

अबला—और उसी ईश्वर का नाम पुकार-पुकार कर प्राण ले रहे हैं अपने भाइयों के—इज्जत ले रहे हैं अपनी मा-बहनों की—भस्म कर रहे हैं अपने घर-गाँव। कहते हो ईश्वर एक ही है ! हम कहते हैं ईश्वर एक ही है; वे भी यही कहते हैं। फिर भला रक्षा करनेवाला ईश्वर कौनसा और विध्वंस करनेवाला ईश्वर कौनसा है ? यदि ईश्वर एक ही है तो फिर दोनों के मुँह से दो प्रकार की बातें कैसे करता है यह ईश्वर ?

मा—जो रक्षा करता है वही विध्वंस करता है; और जो विध्वंस करता है वही रक्षा करता है सबकी। यही बताया था उस साधू ने। यही बताया था स्वामी रामकृष्ण ने। यही बताते हुए स्वामी विवेकानन्द ने समस्त संसार पर विजय प्राप्त की थी। लेकिन हम लोग उन्हें भूल गए हैं। उनकी सीख नहीं भिन पाई हमारी नसों में—इसीलिए हो रहा है यह विध्वंस।

अबला—मेरे प्रश्न का उत्तर भी तो दीजिए कोई, किस ईश्वर को पुकारना चाहिए ?

मा—जो सामने दिखाई दे रहा है उस ईश्वर को—मनुष्य को ! मनुष्य ही मनुष्य का प्राण हरण कर रहा है; मनुष्य ही मनुष्य की रक्षा कर रहा है ! प्राण लेने वाले को ही पुकारना चाहिए कि 'रक्षा करो'।

राखाल—(**अपने आप से बड़बड़ाता हुआ**) जो अपना भर सोचता है वह दूसरों का नाश करता है। एकता नहीं है हम लोगों में। लोग संगठित हो जाते तो क्यों आता यह प्रसंग ? रैयत को हम जमींदारों ने चूस लिया है। रैयत कहती है मरने दो जमींदारों को ! जमींदार कहता है मैं बच जाऊँ बस, मरती रहे रैयत ! जो भी है अपनी-अपनी सोच रहा है !

मा—जो भी कौन ?

राखाल—सभी लोग।

मा—सभी लोग कौन ? पुरुष या औरतें ?

जगदीश—(**दाँत पीसकर**) सभी ! सभी !

अवला—सच ? आपने हम से कलकत्ते जाने के लिए कहा—गए हम ? मैं कह रही थी दीदी को कलकत्ते भेजने के लिए, क्यों नहीं भेजा आपने उसे ?

सुचेता—(आगे आकर) पर मैं न जाती।

अवला—लेकिन क्या आपने भेजा इसे ? यह जाती या न जाती यह बाद की बात थी; पर आपने उस विचारे को लौटा दिया। विवाह करके आज सुख से रहती होती यह कलकत्ते में। भागकर नहीं—संकट से अपना बचाव करने के लिए नहीं—अधिकार से रहती अपने पति के घर में।

सुचेता—मैं न जाती।

अवला—किसे बता रही हो दीदी ? पति को छोड़कर तुम यहाँ रहतीं ?

सुचेता—(मुँह ही मुँह बड़बड़ाती हुई) पति को ! वह पति नहीं था मेरा।

अवला—पति नहीं था—पति हो जाता। इन्होंने स्वीकृति दी होती, चिट्ठी लिखी होती मामा बाबू को तो विवाह कर देते वह तुम दोनों का। क्यों किया यह पाप ?

जगदीश—किस से पूछ रही हो ?

मा—तुम से पूछ रही है। अपने पति से नहीं; इस घर के मालिक से पूछ रही है वह—मेरी इस दीदी के बड़े भाई से—बिना बाप की इस लड़की के पिता की जगह पालनकर्ता बने हुए घर के धनी से पूछ रही है वह···(जगदीश चुप रहता है। क्षण भर के लिए कोई नहीं बोलता।)

राखाल—बताओ न दादा ?

जगदीश—जो मुझे कहना था वह मैंने उसी समय कह दिया था। बार-बार वही दुहराने की मुझे आदत नहीं है। उक्ता गया हूँ मैं इस घर से। सभी मेरे विरुद्ध हो गए हैं। मुझ ही से तुम सब ऊब गए हो।

[तकिए पर रखी हुई चादर कंधे पर डाल लेता है और कोने में से छड़ी उठाकर गुस्से से बाहर चला जाता है। मा दरवाजे तक जाकर झाँककर बाहर देखती है और वापिस आती है।]

मा—जाओ राखाल, देखो कहाँ जा रहा है। दिन ऐसे हैं, व्यर्थ झल्लाकर कहीं जायगा और संकट में फँसेगा। ले आओ उसे। (राखाल जाता है)

अबला—(सुचेता से) क्यों आई यहाँ? अच्छी थी कलकत्ते में—निर्भय थी। यहाँ अग्नि-कुंड सुलग रहा है। जानबूझ कर क्यों आई यहाँ?

सुचेता—यह मेरा घर—मेरी मा, मेरे भाई—तुम मेरी लाडली भाभी—और किसी के लिए नहीं पर तुम्हारे लिए दौड़ती आई मैं। तुम लोग संकट में रहो, नित्य आकाश की ओर आँखें लगाए बैठे रहो और क्या मैं तुम लोगों को छोड़कर वहाँ रहूँ?

मा—खून का खून की ओर झुकाव है यह बहू। कैसे रहती वह उधर?

अबला—तो मैं गई अपने मायके? मेरा झुकाव भी तो उधर ही होना चाहिए था। कितने बुलावे आए! परसों स्वयं दादा आया था मेरा। कितना कह रहा था मुझ से चलने के लिए—आपने भी जाने के लिए कहा, पर क्या मैं गई? यह कैसा झुकाव? खून का सम्बन्ध है? तेरह साल की थी तब मैं इस घर में आई थी। तब से दस साल बीत गए। कितनी बार गई मैं मायके? इस ससुराल में ही मुझे मायका मिल गया था फिर भला मायके जाने की इच्छा क्यों होती मुझे! और अब आप कहती हैं कि मुझे मायके जाना चाहिए था। लेकिन जब मैंने इसे कलकत्ते जाने के लिए कहा तो आपको मेरी बात नहीं जँची। खून का सच्चा झुकाव है तो भला यह कैसे जा सकती है आपको छोड़कर?

मा—गई नहीं यह आखिर।

अबला—क्या कहा जा सकता है, यह चली भी जाती। जिस आकर्षण

के कारण मैं यहाँ रही, उसी आकर्षण के कारण शायद यह अजित के साथ चली भी जाती। पर इन्होंने इसे नहीं जाने दिया। घर आए अतिथि का अपमान किया—और हम सब ने चुपचाप सहन किया।

मा—चुपचाप सहन किया ! सहन न करके और क्या कर सकते थे? घर का मालिक वह...

अबला—और आप कौन हैं ?

सुचेता—यह उसकी मा है—मालकिन नहीं। तुम मालिक की पत्नी हो; पर तुम भी तो चुप रहीं।

मा—यह इसी तरह है ! न जाने क्या होने वाला है ! यही चलता आ रहा है अनेक पीढ़ियों से, उस समय कुछ भी महसूस नहीं होता था। यही अपने बड़े-बूढ़ों के समय से चलती आई रीति है—सोचकर हम चुपचाप सिर झुका देतीं थीं। और अब—न जाने क्या हो गया है अब !

अबला—ये मुसीबतें आ रही हैं न ?

सुचेता—नहीं—केवल इसीलिए नहीं। इस घर के बाहर—इस गाँव की सीमा के बाहर संसार है, उस संसार के आचार-विचार बदल रहे हैं, उस संसार में परिवर्तन हो रहे हैं, यह दिखाई देने लगा है हमें।

अबला—दिखाई तुम्हें देने लगा है, हमें नहीं।

सुचेता—तुम्हें भी दिखाई दे रहा था, तेरहवें साल इस घर में आने के पूर्व तुम भी देखती थीं वह। लड़की की जाति को पुरुष की अपेक्षा अधिक समझ होती है—उसी समझ के कारण तुम देख रही थीं; इसीलिए अब इस प्रकार बोल रही हो, मैं कलकत्ता जाती नहीं—

[घबराया हुआ राखाल प्रवेश करता है]

मा—क्या हुआ रे ? ऐसा घबराया क्यों है ?

राखाल—दादा रूठकर गए—मैं उनके पीछे बराबर दौड़ रहा था लेकिन उन्होंने मेरी पुकारों की ओर ध्यान नहीं दिया। रास्ते में ही वह कहाँ अदृश्य हो गए पता नहीं। ढूंढ़ ढूंढ़ कर मैं थक गया—सोचा यहाँ आए होंगे...

मा—कहाँ गया यह ? कैसा आततायी है इसका स्वभाव ! क्यों नहीं समझता यह ? करीम चाचा दिखाई दिए तुम्हें कहीं ?

राखाल—सुबह से उनका भी कहीं पता नहीं है ।

मा—तुमसे फिर एक बार जाकर ढूँढ़ने के लिए कहा होता, पर डर लगता है मुझे । वह एक तो गया ही है और तू भी चला गया तो हम औरतें क्या करेंगी यहाँ ?

अबला—(अब तक सुन्न-सी हो रही थी, आदेश देने के आवेश में) जाओ, उन्हें ढूँढ़कर ले आओ ।

मा—(जाते हुए राखाल से) ठहर...

अबला—नहीं—जाओ, उन्हें खोज लाओ, अब डर किस बात का रखना है ? संकट आने वाला होगा तो उससे कोई भी न बच सकेगा । घर में हों चाहे घर के बाहर—सभी ओर आग धधक रही है । जाओ अभी हाल...

[करीम चाचा जगदीश को आलिंगन दिए ले आते हैं]

करीम—वहाँ बैठो । मैं ही था इसलिए नहीं तो आज विकट प्रसंग आता । अरे, इस घर के मालिक तुम हो इन सब लोगों की रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर है और तुम्हीं इस प्रकार आपे से बाहर होने लगे तो ये बिचारी औरतें क्या करें ? किस से मदद की अपेक्षा करें वे ? बैठो वहाँ—कह रहा हूँ न बैठो ! और तुम सब—अन्दर जाओ । यहाँ क्या काम है तुम लड़कियों का ? (अबला और सुचेता चुपचाप अन्दर जाती हैं । राखाल करीम चाचा के पीछे खड़ा रहता है । शैलेश्वरी अकड़कर सीधी खड़ी है) और भाभी तुम भी अन्दर जाओ । (वह नहीं जाती) अच्छा । क्यों गया था यह नाराज़ होकर ?

मा—इसे नाराज़ होने के लिए भी कोई कारण लगता है ?

जगदीश—बिना कारण के मैं क्यों जाता ? तुम लोगों ने तंग कर डाला था मुझे । मैं जो करता हूँ वह तुम्हें पसंद नहीं आता । गाज सिर पर गिरा चाहती है—और तुम लोग हो जो पग पग पर मेरा अपमान करते

हो ! स्वयं पत्नी भी पर्वाह नहीं करती मेरी। क्यों करे ? तुम जो प्रोत्साहन देती हो उसे ! मीठा बोलती है ! अदब दिखाती है ! पर अपमान अपमान है ! कैसे सहन कर सकता हूँ मैं ?

करीम—क्या हुआ, बताओगे भी मुझे…

मा—कोई विशेष बात नहीं, उस दिन अजित बाबू को निकाल दिया था इसने…

करीम—नहीं, मैं ले गया था उसे।

मा—पर वह दीदी को लिवा ले गया होता कलकत्ता तो मेरा एक बोझा हल्का हो गया होता। मैं बहू से भी मायके जाने के लिए कह रही थी।

करीम—अब तो जाना भी कठिन हो गया है भाभी।

मा—अभी नहीं—कब से कह रही थी मैं पर कोई मेरी नहीं सुनता।

करीम—कैसे जँचे उन्हें तुम्हारी बात तुम, सब को विपत्ति में छोड़ कर कैसे जायँ ? बंगाली कन्याए हैं वे।

मा—लेकिन यह हो क्या रहा है ? आपसे भी नहीं सँभाले जाते ये लोग ?

करीम—जमाना बदल गया है भाभी ! हम बुढ्ढे लोग निकाले से हो गए हैं अब। क्या हम अधर्म को लेकर बरत रहे थे ? क्या अपना धर्म हम नहीं जानते थे ? बंगाली भाषा में पुकारने से क्या हमारी पुकार अल्लाह तक नहीं पहुँचती थी ? पर ये जवान दूसरे के कहने पर बौखला उठे हैं। अपनी मातृभाषा भी इन्हें अप्रिय हो गई है। उत्तर की ओर से कुछ लोग आते हैं, इन्हें कुछ बताते हैं और ये भडक उठते हैं। पुश्तों से परस्पर प्रेम से बरतने वाले हम लोग आज एक दूसरे के दुश्मन बन बैठे हैं।

जगदीश—मैं यह आपका पुराण रोज सुन रहा हूँ ! कान पक गए हैं मेरे। शान्ति के ये पुराण सुनकर जान नहीं बच सकती।

करीम—ये बच्चे भी नहीं सुनते, तुम भी नहीं सुनते, शान्ति का

पुराण कोई भी नहीं सुनना चाहता। यह कैसा नशा सवार है इन पर ?

राखाल—वही मैं भी पूछ रहा हूँ—यह कैसा नशा सवार है आपके बाल-बच्चों पर चाचा ? हमने कुछ बिगाड़ा है इनका ? कभी टेढ़ी बात की है हमने ? कभी कोई मतभेद पैदा हुआ था हम लोगों में ? सुख-चैन से रह रहे थे—फिर क्यों यह बुद्धि भ्रष्ट हुई आपके बाल-बच्चों की ?

करीम—दूसरे के कहने पर जो चलता है वह अपना नाश कर लेता है और दूसरे का भी नाश करता है—जाने दो ! जितना कहा जाय थोड़ा है। कहने का कुछ उपयोग भी तो होना चाहिए।

मा—कहाँ तक आ पहुँचे हैं ये दंगाखोर ?

करीम—गाँव की सीमा तक आ पहुँचे हैं इसीलिए मैं सिहर उठा हूँ। अब यों करो, बाहर का दरवाजा अच्छी तरह मजबूती से बन्द कर लो। अन्दर से लकड़ी का कुन्दा रख लो जिससे दरवाजा न खोल पाएँ। जितनी सावधानी से रहा जा सकता है, रहो, उसके बाद हम हैं और हमारी तकदीर है। मैं अब जाता हूँ। रोक सका तो उन्हें रोकने का प्रयत्न करता हूँ। लेकिन घर की औरतों को कहीं बन्द कर दो। डर उन्हें है। असली मुसीबत आने वाली है उन्हीं पर। इसलिए चिन्ता भी उन्हीं की करनी चाहिए। सुना जगदीश ? सुना राखाल ? अब मैं जाता हूँ (**गर्दन झुकाकर धीमे-धीमे चला जाता है। क्षणभर तीनों स्तब्ध खड़े रहते हैं**)

जगदीश—कैसा तूफान उठा है इस हृदय में ! कुछ सूझता ही नहीं ! चलो राखाल, सब नौकरों को बुला लो समय बहुत थोड़ा है। संकट दरवाजे तक आ पहुँचा है। जो किया जा सकता है, करना चाहिए। मुझे लक्षण अच्छे नहीं दिखाई दे रहे हैं। करीम चाचा भी क्या कर सकते हैं ? कौन सुनेगा उनकी ? और किसी को अपनी न सुनते हुए देखकर कैसे कहा जा सकता है कि वह भी नहीं उलट पड़ेंगे ? कुछ भी हुआ तो भी···

मा—(डाँटकर) जगदीश !

जगदीश—क्यों डाँट रही हो मुझे ? देख ही लोगी अभी। कुछ भी हो जान से जाते···

मा—निकलो यहाँ से। उल्टी-सीधी बातें न करो। आदमी आदमी में बहुत फरक होता है जगदीश! इस तरह इन्सानियत न भूलो। जाओ—पहले बचाव का कुछ प्रबन्ध करो, और तुम राखाल दादा को छोड़ कर कहीं न जाना।

[जगदीश और राखाल बाहर जाते हैं। मा जाकर बाहर का दरवाजा बन्द करती है, क्षण भर ठहरती है फिर दरवाजा खोलती है। देहली लाँघ कर बाहर झाँककर देखती है। फिर अन्दर जाती है। सुचेता अन्दर से आती है।]

मा—वह कहाँ है?

सुचेता—ठाकुरजी के पास बैठी है। बार-बार ठाकुरजी के सामन माथा टेक रही है। मेरे पुकारने पर भी जब उसने उत्तर नहीं दिया तो मैं घबरा गई। उसके चेहरे का रंग ही उड़ गया है—

मा—क्या वह हमारी बातें सुन रही थी?

सुचेता—हम दोनों सुन रही थीं।

मा—ईश्वर को छोड़कर अब और किसे पुकारा जा सकता है? इस विपत्ति में मनुष्य भला क्या मदद कर सकता है? वही समझदार है। ईश्वर को ही पुकारना चाहिए। (अन्दर जाती है।)

सुचेता—(स्वगत बड़बड़ाती है) ईश्वर को ही पुकारना चाहिए। [वही वाक्य बड़बड़ाती सुचेता दरवाजे तक जाकर बाहर झांककर देखती है, फिर अन्दर आती है। दीवाल पर टँगे हुए अपने पिता और करीम चाचा के चित्र की ओर टकटकी लगाए देखती रहती है तत्पश्चात् उस तसवीर को नमस्कार करती है।

जय काली माते। अब तू ही हमको बल दे। रिपु संहार के लिए
अष्ट भुजा महिषासुरमर्दिनी, लेकर
कर में त्रिशूल-सुदर्शन
दौड़ी आओ दुर्गा माते

शील-विभव की रक्षा करदे, अपने अष्ट करों से
एक तुम्हारा ही संबल अब
कितना तुम्हें मनाऊँ दुर्गे

दीवाल पर टँगी हुई भिन्न-भिन्न देवताओं की तसवीरों के सामने जाकर नमस्कार करती है। इतने में कहीं दूर शोरगुल होता सुनाई देता है। वह चौंककर दरवाजे के पास जाती है, बाहर झाँककर देखती है और दरवाजा बन्द कर लेती है। उसके दरवाजा बन्द करते समय अबला बाहर आती है और वह बन्द किया हुआ दरवाजा खोल देती है। कहीं दूर उसी प्रकार का शोरगुल बराबर सुनाई दे रहा है।]

अबला—यह क्या पागलपन कर रही थीं ? वे दोनों ही बाहर गए हुए हैं न ?

सुचेता—सच ! वह दूर से आता हुआ शोरगुल सुन रही हो न तुम ? मैं उसी को सुनकर घबरा गई। घबराकर अनजाने ही मैंने दरवाजा बन्द कर लिया। मेरे बिल्कुल ध्यान में नहीं रहा कि वे बाहर गए हुए हैं। बराबर ईश्वर को गुहरा रही थी—

अबला—मैं भी वही कर रही थी। ईश्वर को गुहरा रही थी ! इस गाँव के प्रत्येक घर में हर व्यक्ति इसी प्रकार ईश्वर को गुहराता बैठा होगा। मा भी ठाकुरजी के सामने नाक रगड़ती बैठी हैं। जिन-जिन गाँवों में यह अनर्थ हुआ है क्या वहाँ के लोगों ने ईश्वर को नहीं पुकारा होगा ? फिर ईश्वर दौड़कर क्यों नहीं गया वहाँ ? क्या हो गया है इस ईश्वर को ? सो रहा है या मस्ती में चूर है ? या हमारी पुकार ही नहीं पहुँच पाती उसके कानों तक ? देवता को पुकार रहे हैं हम—देवता को पुकारते-पुकारते शायद दानव ही दौड़ आयें। देव और दैत्य में क्या कुछ अन्तर ही नहीं रहा ?—

सुचेता—चुपचाप—यों उलटी-सीधी बातें मत करो। नहीं तो उसी से नाराज़ हो जायगा ईश्वर।

अबला—जिन्होंने ऐसी बातें नहीं कीं उनके पुकारने पर कब दौड़ा

आया ईश्वर? क्या ईश्वर का नाम लेकर ही नहीं हो रहा है यह विध्वंस? (चौंककर) सुनो, सुनो, वह शोरगुल अब बिल्कुल पास सुनाई पड़ रहा है (दौड़ती हुई जाकर दरवाजे के बाहर देखती है) कहाँ गए हैं ये? (करीम चाचा शीघ्रता से अन्दर आता है) वे मिले आपको?

करीम चाचा—कौन?

सुचेता—दादा और राखाल।

करीम—(घबराकर) नहीं! क्या वे बाहर गए हैं?

सुचेता—बाहर का इन्तजाम करने जाते हैं, कह गए हैं।

करीम—इस समय किसी का भी बाहर जाना खतरे से खाली नहीं है। नहीं सूझता, क्या किया जाय। कहाँ गए हैं वे? (वह तत्काल शीघ्रता से बाहर जाता है। वे दोनों घबराई हुई दरवाजे में खड़ी बाहर झाँककर देखती हैं। बाहरी शोरगुल बढ़ता हुआ सुनाई दे रहा है। वे चौंककर अन्दर आ जाती हैं।)

सुचेता—क्या किया जाय अब? कहाँ गए वे? कौन जाय उन्हें खोजने के लिए? नौकरों का भी कहीं पता नहीं है। सभी अपनी-अपनी जान बचाकर भागने लगे हैं—

अबला—(धीरे से) भागकर जायँ कहाँ? घर रहो तो मरना है और बाहर रहो तो भी मरना ही है। अब मरने से कोई नहीं बच सकता। अब जी कड़ा कर लेना चाहिए दीदी—मरने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। मरने से डर रहे हैं! सब पुरुष मौत से डर रहे हैं! हम स्त्रियों को जो डर है वह मौत का नहीं—जीवित रहने का! मृत्यु से भी बड़ी मृत्यु स्वीकार करके जिन्दा रहने का! जिन्दा रहकर घरबार गँवा देने का! इसकी अपेक्षा तो मार देते तो कहीं अच्छा होता। पुराने जमाने में पति के युद्ध पर निकलते ही राजपूत स्त्रियाँ जौहर किया करती थीं—जिन्दा जला लेती थीं अपने आपको। वैसा ही क्यों न करें हम स्त्रियां? (मा आती है। उसके पास जाकर उसका हाथ पकड़कर) जानती हैं न आप, राजपूतानियाँ जिन्दा जला लेती थीं अपने आप को

वैसा ही क्यों न करें हम ?

मा—हाँ ! क्यों न जल मरें हम ! मरना आसान है, पर यह जिन्दा रहना ही अधिक कठिन है। मुझे डर है तो तुम्हीं लड़कियों का। यह संकट आएगा इसमें सन्देह नहीं; और वह टाला नहीं जा सकता यह भी निःसन्देह है। मन को धोखा देने के लिए ईश्वर को पुकारना है ! ईश्वर हो चाहे मनुष्य कोई भी नहीं आयगा इस संकट से बचाने के लिए। मुझे वैसा कोई डर नहीं है—बुड्ढी हो गई हूँ मैं अब, पर तुम लड़कियों का क्या होगा इस कल्पना मात्र से ही मेरा कलेजा फटा जा रहा है। क्या होने वाला है ईश्वर, क्या होने वाला है अब ? (आँखें पोंछकर गम्भीरता से) कहाँ गए हैं ये दोनों ? क्या कर रहे हैं अभी तक बाहर ?

सुचेता—अभी करीम चाचा आए थे। वे गए हैं उन्हे ढूंढ़ने के लिए।

अबला—(सुन्न होकर) हर आदमी अपनी मृत्यु से डर रहा है। भाग गए हों तो आश्चर्य न होगा मुझे—

सुचेता—क्या कह रही हो भाभी ?

अबला—सभी को जान प्यारी होती है—अपनी जान प्यारी होती है। अपनी प्यारी जान बचाने के लिए अपने प्राणों से भी प्यारी कही हुई जान लेने में भी नहीं हिचकिचाता मनुष्य।

मा—कौन मनुष्य ? पुरुष ! स्त्रियाँ नहीं। और मा विशेष रूप से नहीं। अपनी जान पर खेलकर पैदा करती हैं हम दूसरे जीवों को ! पुरुष केवल पैदा होता है—पैदा नहीं करता किसी को। जिसने जीव को जन्म दिया है मरने से वह नहीं डरती—

अबला—मरने से कौन डरता है ? हम मरने से नहीं डरतीं। हम डरती हैं जिन्दा रहने से। वह जीवन ! पूर्व बंगाल की स्त्रियों के मत्थे पड़ा हुआ वह अमंगल जीवन उस जीवन से डर रही हूँ मैं—(करीम चाचा रासाल और जगदीश प्रवेश करते हैं) अब वह दरवाजा बन्द कर लो (इतना कहकर वह स्वयं जाकर दरवाजा बन्द करने लगती है।)

करीम—जरा ठहरो बेटी, मेरे यहाँ रहने से काम नहीं चलेगा। मेरे यहाँ रहने से तुम्हें धोखा है—और शायद मुझे भी। पत्थर-दिल आदमियों को अपना-पराया नहीं दिखाई देता। मुझे डर नहीं है यदि वे मुझे मार डालें ! और कितनी बाकी है मेरी उमर ? कल मरा तो और आज मरा तो, मेरे लिए एक ही बात है। अपने बच्चों को बचाता हुआ मारा गया तो सौभाग्य समझूँगा अपना ! पर वह होगा नहीं। बाहर गया तो उन्हें रोक रखने का प्रयत्न करूँगा। आडा लेट जाऊँगा उनके रास्ते में। मरना होगा तो शैतान के चंगुल में फँसे हुए अपने बच्चों के पैरों-तले रौंधा जाकर मरूँगा। तुम बच्चों के बचाव के लिए मरूँगा। जाओ सब लोग अन्दर, और तुम औरतें, कहीं कोने कोतरे में, जहाँ कोई भी तुमको देख न सके· छिप जाओ। ज़रा भी न हिलना-जुलना। सारा घर ढूँढ़ेंगे वे शैतान, और तुम दोनों—क्या करोगे तुम दोनों ? ईश्वर का नाम लो और जो ठीक समझो करो, वही बुद्धिदाता है। वही तुम्हारी रक्षा करे। (दरवाजा खोलकर बाहर जाते हुए) अब दरवाजा बन्द कर लो। (जाता है।)

जगदीश—जाओ मा, जाओ तुम, और तुम दोनों भी—

मा—क्या समझे हो तुम ? अपने बच्चों को संकट में छोड़कर अपने को बचाने के लिए ओलती में मुँह छिपाकर बैठूँ ? मा हूँ मैं। कलेजा फट रहा है मेरा। उस कलेजे के तुम तंतु हो—

जगदीश—(उसके पैरों पर सिर रखकर) हाथ जोड़ता हूँ, पैरों पड़ता हूँ मा, तुम अन्दर जाओ। इन दोनों को भी साथ लेती जाओ। करीम चाचा ने जो अभी कहा था सुन लिया था न ? कहीं गुप्त जगह में छिप रहो।

मा—पहले वह दरवाजा बन्द करलो। अबला ! सुचेता ! तुम दोनों अन्दर जाओ। (सुचेता जाने लगती है पर अबला सुन्न खड़ी रहती है यह देखकर वह भी रुक जाती है।) मेरा कहना नहीं मानतीं तुम ?

अबला—कहा न मानने का ही समय है यह ! इस समय कोई किसी

की न सुनेगा । सभी अपनी-अपनी जान हथेली पर लिये हैं—

जगदीश—(दाँत पीसकर) जान हथेली पर लेकर क्या होगा ? पहले कुछ न कुछ जान बचाने का उपाय करो, जाओ यहाँ से ।

अबला—और आप ?

जगदीश—मैं भी इसी प्रकार छिपकर बैठूंगा ।

अबला—और राखाल ?

राखाल—जहाँ मेरी मा, मेरी भाभी और मेरी प्यारी बहन होगी वहीं मैं भी रहूँगा ।

जगदीश—तो पकड़ो इनका हाथ और ले जाओ अन्दर । तुम्हारे यहाँ रहते हुए मैं कैसे कहीं जा सकता हूँ ? (चिल्लाकर) कह रहा हूँ न अन्दर जाओ ! जाओ, चले जाओ यहाँ से ।

मा—(धीमे से) सुना ? शोरगुल बिलकुल दरवाजे के पास आ गया—

अबला—(जगदीश के पैर पकड़कर) जाइए, अन्दर जाइए, छिप कर बैठिए कहीं । हमारे कारण आपके प्राणों पर न आ बने । हम शिकार बनेंगे पर कम से कम आप बच जायँगे । जाओ राखाल—

राखाल—ना भाभी—जान जाने पर भी मैं नहीं जाऊँगा ।

अबला—(मा के पैरों पर सिर रखकर) आप अन्दर जाइए । आपके गए बिना यह नहीं जायँगे । इन्हें भी लेती जाइये । मैं जिहाद करूँगी । स्वयं अपना बलिदान करके बचाऊँगी आप सबको । इतना पुण्य पाने दीजिए मुझे ।

[बाहर शोरगुल बिलकुल दरवाजे के पास आया-सा लगता है । बाहरी दीवाल का दरवाजा जोर-जोर से पीटने की आवाज आती है । आग की ज्वालाएँ बीच-बीच में दिखाई पड़ रही हैं और धुआं अन्दर घुस रहा है । 'मारो' 'पीटो' का शब्द सुनते ही राखाल कोने में से एक डण्डा उठा लेता है और बाहर जाता है । भीतरी कम्पाउण्ड में कई लोगों का शोर सुनाई पड़ता है । मा राखाल को पुकारती हुई उसके पीछे बाहर जाती

है। जगदीश, अबला और सुचेता उसे रोकने का प्रयत्न करते हैं पर वह उनसे अपने को छुड़ाकर बाहर जाती है। बाहरी शोर बढ़ रहा है। जगदीश घबराकर दरवाजा बन्द करने जाता है। अबला उसे रोकती है। आधे खुले दरवाजे से जब वह बाहर जाने का प्रयत्न कर रही होती है तब सुचेता भी उसके पीछे खड़ी हो जाती है। जगदीश दरवाजे पर झगड़ रहा है इसी समय बाहर से किसी के हाथ दरवाजे की राह भीतर आकर अबला और सुचेता दोनों को बाहर घसीट ले जाते हैं। तभी जगदीश दरवाजा बन्द कर लेता है। वह बराबर चहलकदमी कर रहा है। बाहर कोई जोर-जोर से दरवाजा पीट रहा है। 'जगदीश' मा की पुकार और तत्पश्चात् 'दादा' 'दादा' सुचेता की कलेजा चीर देने वाली पुकार सुन पड़ती है। जगदीश भौंचक्का-सा कहीं छिपने के लिए स्थान ढूंढ़ता है, कभी अन्दर जाता है तो कभी बाहर आता है। बाहर से दरवाजा जोर-जोर से पीटने की आवाज सुनाई पड़ रही है। उसके बाद जगदीश के नाम करीम चाचा के जोर-जोर से पुकारने की आवाज सुनाई पड़ती है। क्षण भर के लिए वह दरवाजे के पास जाता है। तख्त हटाने के लिए हाथ बढ़ाता है। बाहर करीम चाचा जोर-जोर से दरवाजा पीट रहा है। जगदीश को दरवाजा खोलने के लिए कह रहा है। बाहर बड़ी जोर का शोरगुल हो रहा है जिसे सुनकर वह पीछे हट जाता है]

जगदीश—(स्वगत बड़बड़ाता हुआ) आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि !

[यही वाक्य बड़बड़ाते समय बाहर से मा, अबला और सुचेता के चीखने की आवाज दूर से सुनाई पड़ती है। साथ ही करीम चाचा का उनसे 'डरो मत, मैं आया' कहते हुए दूर जाने का शब्द सुनाई पड़ता है। क्रमशः शोरगुल कम होता है।]

जगदीश—(दोनों हाथों से सिर थामकर) जान बची !—गए शायद ! अब डर नहीं—अब डर नहीं ! हे ईश्वर, अगाध है तुम्हारी करनी !

[पर्दा गिरता है]

तीसरा अंक

[स्थान—वही। उस जगह उदासीनता-सी छाई हुई दिखाई देती है। तख्त हैं पर उन पर पड़े हुए गद्दे-तकियों पर गिलाफ नहीं हैं। घर में एक प्रकार से उजाड़पन-सा छाया हुआ दिखाई पड़ रहा है । जगदीश खड़ा है। राखाल तख्त पर बैठा है। उसके सिर और कलाई पर पट्टियाँ बँधी हैं।]

राखाल—(दरवाजे से एक बार झाँककर) रोज प्रतीक्षा करते रहो ! किसकी प्रतीक्षा ? कोई न कोई आयगा—कभी न कभी अवश्य आयगा । पागल मन सोचता है इसलिए प्रतीक्षा करनी···

जगदीश—कोई भी नहीं आया। मरी-सी ही हैं वे तीनों । प्रत्यक्ष प्रेत नहीं जलाए, श्राद्ध नहीं किए इसलिए हम उन्हें जीवित समझते हैं । कौन कह सकता है शायद मर भी गई हों !

राखाल—मैं तो मर ही गया था । जीवित कैसे रहा ईश्वर ही जाने ! वह तो करीम चाचा ने निहुरकर मुझे पहचान लिया और घर ले जाकर उपचार किया इसलिए जीवित रहा। आठ दिन रहा उनके घर···

जगदीश—चुप चुप—बोलो मत । कम से कम प्रायश्चित्त किया है कहा करो ।

राखाल—झूठ बोलूं ? कैसे झूठ बोलूं ? बुड्ढे ने मेरी सेवा की, खिला-पिलाकर मुझे जिलाया, घर की औरतों के अतिरिक्त सभी उसके विरुद्ध थे लेकिन फिर भी उसने मुझे आश्रय दिया। मैंने प्रायश्चित्त नहीं किया—करना आवश्यक भी नहीं समझा—और अब आप मुझ से झूठ बोलने के लिए कह रहे हैं ?

जगदीश—तो फिर प्रायश्चित्त करो ।

राखाल—जब मैं समझता हूँ कि कोई पाप ही नहीं हुआ तो फिर प्रायश्चित्त क्यों करूँ ?

जगदीश—उसके घर खाना खाया···

राखाल—हाँ, खाया, न खाता तो मर जाता। अस्पताल में रहना पड़े तो कौन होते हैं वहाँ खाना देने वाले ? कभी कोई इसकी पूछताछ करता है ? अस्पताल से आया आदमी क्या कभी प्रायश्चित करता है ? समझ लो मैं अस्पताल में ही था—करीम चाचा के अस्पताल में !

जगदीश—अच्छा, अच्छा—तुम जो ठीक समझो करो। यह भी न बताओ और वह भी न बताओ !—कहाँ गया यह बुड्ढा ?

राखाल—कौन बुड्ढा ?

जगदीश—करीम चाचा। आज महीने भर से लापता है। तुम जाते हो उसके घर—एँ, अब भी जाते हो उसके घर। पूछा नहीं उनसे कभी ?

राखाल—उन्हें भी कहाँ पता है ? एक दिन सुबह उठकर देखा तो करीम चाचा कहीं चले गए थे। वे सब भी चिंतित हैं। डर बना रहता है सब को। जिस प्रकार हम डरते हैं उसी प्रकार वे भी डर रहे हैं। न जाने कहीं दंगा-फिसाद तो नहीं हो गया ! उनके अपने आदमी भी उनकी जान नहीं बख्शेंगे। सभी उन पर क्रुद्ध हैं।

जगदीश—तुम उसे व्यर्थ चाहते हो। इस समय में किसी को विश्वास नहीं दिलाना चाहिए इन लोगों का। कहते हो घरवालों को पता नहीं है ? मैं सच मानूँगा ?

राखाल—मैं मानता हूँ। मनुष्य एकाध बार ढोंग कर सकता है। रोज जाता हूँ मैं उनके घर, पर वे सब लोग जो चिंता में बेज़ार दिखाई देते हैं क्या वे ढोंग रचते हैं मुझे दिखाने के लिए ?

जगदीश—मुझे उन पर विश्वास नहीं। कैसे विश्वास किया जाय इन लोगों पर ?

राखाल—जिसका स्वयं अपने पर विश्वास नहीं होता उसे सारा संसार अविश्वासी लगता है।

जगदीश—मुझे लक्ष्य करके कह रहे हो ?

राखाल—जो स्वयं ढोंगी होता है उसे सारा संसार ढोंगी दिखाई

पड़ता है।

जगदीश—कौन ढोंगी है ?

राखाल—आप, दाँत क्यों पीसते हैं ? ठीक कह रहा हूँ आपके मुँह पर—आप ढोंगी हैं, कायर हैं, स्वार्थी हैं !

जगदीश—(तिलमिलाकर) राखाल !

राखाल—आपकी आँखों के सामने दुश्मन आपकी मा, बहन, पत्नी को ले गए—चीख रही थीं वे बाहर, पर आपने दरवाजा नहीं खोला। निर्दयता नहीं है यह ? स्वार्थ नहीं है यह ? कायरता नहीं है यह ? हम सब उन दैत्यों के हाथ पड़े और आप दरवाजा बन्द करके अन्दर बैठे रहे। मैं तो मरा-सा ही था। अच्छा हुआ मेरा सिर उन्होंने फोड़ दिया। मेरे सामने अपमान किया उन्होंने तीनों का—मैं भी भाग सकता था, पर मैं उन पर टूट पड़ा। दुबककर बैठा नहीं रहा आपकी तरह। इसीलिए तो मेरा सिर फूटा। करीम चाचा हमें छुड़ाने के लिए आए। उसी समय प्रहार किया उन्होंने उनके हाथ पर। जानते हैं किसने प्रहार किया ?—प्रत्यक्ष उनके पौत्र ने—उनकी लड़की के पुत्र ने। पर वह मर्द पीछे नहीं हटा। उन तीनों को वे लोग घसीटकर जबर्दस्ती ले गए। कमजोर बुड्ढा ! कर ही क्या सकता था इतने जवानों के सामने ? (क्षण भर चुप रहता है) करीम चाचा मुझे अपने साथ ले गए इसीलिए आज मैं जीवित हूँ आपसे बात करने के लिए। जो हुआ उसे जानने की कभी कोशिश की आपने ? मुझ से भी कभी पूछा ? उन्हें दैत्य कहते हैं पर यदि कोई दैत्य है तो वह आप हैं।

जगदीश—ठहरो, ठहरो—राखाल ! मैं बड़ा भाई हूँ तुम्हारा—

राखाल—कैसा बड़ा भाई ! केवल दुश्मनी निभाई आपने हम से। निदान मा-बहन की आर्द्र पुकार सुनकर उनकी मदद के लिए दौड़कर बाहर आना क्यों नहीं आपको सूझा ? चुपचाप कैसे बैठे रह सके आप दरवाजे की साँकल चढ़ाकर ?

जगदीश—वे मुझे मार डालते।

राखाल—तो क्या बिगड़ता ? मा की रक्षा करते-करते मृत्यु आती तो स्वर्ग से देवदूत आते आपको ले जाने के लिए।

जगदीश—मरने के उपरान्त क्या होता, कौन कह सकता है ! आज जिन्दा हूँ इसलिए तुम्हारी यह बातें सुननी पड़ रही हैं। मर जाता तो···

राखाल—तो कुछ नुकसान न होता दुनिया का। मैं नहीं मरा था ? मर ही तो गया था—आज जीवित हूँ यह करीम चाचा का दोष है ! कम से कम अपनी आँखों के सामने मा, बहन और भाभी का अपमान होते तो न देखता ! कहते हैं, मारा जाता ! आज इस प्रकार अपने आत्मीय-जन दृष्टि से ओझल हो गए हैं वे आपकी कायरता के ही कारण। इसकी अपेक्षा तो हम दोनों मर जाते (एकाएक कण्ठ रुँध जाने के कारण मुँह पर हाथ रखकर एकदम नीचे बैठ जाता है) कहाँ है मेरी मा ? कहाँ है मेरी भाभी ? कहाँ है मेरी बहन ? मैं यहाँ हूँ—खाता हूँ, पीता हूँ। मृतवत् इधर-उधर घूमता हूँ। कहाँ है मेरी मा ? (एकदम फूट-फूट कर रोने लगता है)

जगदीश—(राखाल के समीप जाकर उसके कंधे पर हाथ रखता हुआ) राखाल !

राखाल—(उसका हाथ झिडककर तड़ाक से उठकर) चले जाइये यहाँ से ! मेरी आँखों के सामने न रहिए—

जगदीश—बड़ा भाई हूँ मैं तुम्हारा—

राखाल—कोई नहीं है मेरा बड़ा भाई। बाप नहीं। मा नहीं। भाई नहीं—सब मर गए—सब के खून हो गए···

जगदीश—सुनो तो···

राखाल—एक शब्द भी नहीं सुनना है मुझे ! इतनी घृणा हो गई है—इतनी चिढ़ आई है—इतना क्रोध आया है ! यहाँ क्षण भर भी आप और ठहरे तो गला दबाकर प्राण ले लूँगा आपका। जाइये—चले जाइये यहाँ से। कह रहा हूँ न।

जगदीश—दुनिया ही बदल गई है ! (इतना कहकर चद्दर कन्धे पर

रखकर भीतर चला जाता है। उसके जाते समय राखाल निगल जाने वाले भाव से मुट्ठी कसकर उसकी ओर देखता रहता है। उसके जाते ही फिर सिसकी आने के कारण वह तत्काल दौड़ता हुआ अन्दर जाता है। क्षण भर वहाँ कोई भी नहीं होता। तत्पश्चात् सुचेता सभय कदमों से अन्दर आती है। दरवाजे के पास आकर ठिठकती है। अन्दर किसी को न देखकर किंचित् सँभलती है। दीवाल पर टँगे अपने पिता और करीम चाचा के फोटो को देखकर नमस्कार करती है। फिर धीमे-धीमे भीतरी दरवाजे के पास जाती है और अन्दर झाँककर देखती है। दूसरे ही क्षण राखाल आनन्द से सुचेता ! सुचेता ! पुकारता दौड़ता हुआ बाहर आता है। उसके आते ही वह एक एक कदम पीछे हटती हुई दरवाजे तक जाती है। राखाल बराबर उसका नाम बड़बड़ाता हुआ उसके पास जाने का प्रयत्न करता रहता है। उसके बिल्कुल समीप आते ही हाथ के इशारे से वह उसे दूर रहने के लिए कहती है।)

राखाल—सुचेता ! सुचेता ! तुम्हीं हो न ? सुचेता हो न तुम ? क्या सचमुच तुम आई हो ? बोलतीं क्यों नहीं ? सुचेता, बोलतीं क्यों नहीं तुम ? क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ? या तुम—या तुम···

सुचेता—(गंभीरता से) क्या तुम समझे मैं भूत हूँ ! (वह सकारात्मक गर्दन हिलाता है) भूत ही हूँ मैं। उस दिन मैं मरी—उसी दिन मर गई मैं। यह मेरा भूत है। पिशाच के समान घूम रही हूँ। इस घर में कदम रखने का अब मुझे अधिकार नहीं रहा। पतित हो गई हूँ मैं—भ्रष्ट हो गई हूँ। अब मैं कुमारी नहीं हूँ—सुना राखाल ? मैं अब कुमारी नहीं हूँ। तुम्हारी बहन नहीं हूँ—दादा की बहन नहीं हूँ। तुम किसी की कुछ नहीं हूँ। पराई हो गई हूँ मैं—परधर्मी हो गई हूँ। सुचेता कहकर तुमने पुकारा मुझे—मैं अब सुचेता नहीं—हुस्नबानू हूँ मैं—सुना ? मेरा नाम है हुस्नबानू—सुचेता नहीं। तुम्हारे सामने जो खड़ी है वह हुस्नबानू है। आगे मत बढ़ो—मुझे न छूओ। मेरी छूआछूत होगी तुम्हें। दूर हटो—दूर हटो—(चिल्लाकर) कह रही हूँ न कि मुझे हाथ न लगाओ !

राखाल—(दाँत पीसकर) क्यों न हाथ लगाऊँ ? तुम्हारा नाम बदला—मेरा नहीं बदला ! पर तुम्हें हाथ लगाने का (जबर्दस्ती उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचकर) इस प्रकार अपने पास खींचने का अधिकार मिल गया है मुझे। आठ दिन में करीम चाचा के घर था। उनके घर का अन्न मैंने खाया है।

सुचेता—मैं जानती हूँ।

राखाल—तुम जानती हो ? किसने कहा तुम से ?

[क्षण भर तक उनकी बातें सुनकर प्रवेश करता हुआ करीम चाचा कहता है।]

करीम—मैंने उससे कहा।

राखाल—(आश्चर्य से) आपने ?

करीम—हाँ ! मैंने। मैंने ही कहा उससे। मैं ही ले आया उसे।

राखाल—कहाँ से ?

करीम—लाहौर से।

राखाल—लाहौर से ?

करीम—हाँ, पीछा करता गया था मैं। जरा सा सुराग मिल गया—उसी के सहारे गया—यह नहीं आ रही थी—

राखाल—(चिल्लाकर) यह नहीं आ रही थी ?

करीम—किस तरह आती यह ? तुम्हारी नहीं रही थी यह; हमारी हो गई थी—एक भले आदमी की पत्नी हो गई थी।

राखाल—(उदासीनता से) पत्नी ! सुचेता-सुचेता पत्नी ?—हुस्नवानू ! (रुआँसा होकर) यह क्या कह रहे हो चाचा ?

करीम—सच है यह।

राखाल—तो आपने क्यों नहीं बाधा उपस्थित की उस विवाह में ?

करीम—वह पहले ही हो गया था—मेरे पहुँचने के पहले ही। इसलिए वह नहीं आ रही थी।

सुचेता—किसलिए आती यहाँ ? क्या अब कोई मुझे घर में ले लेगा ?

राखाल—मैं भी तो घर में हूँ ही।

सुचेता—मेरी और तुम्हारी स्थिति में अन्तर है ! मैं भ्रष्ट हो गई हूँ। कोई विधि की गई होती तो उसकी मैं पर्वाह न करती—पर मेरी देह भ्रष्ट हो गई है।

राखाल—मेरी देह भी भ्रष्ट हो गई है। मैंने इनके घर का अन्न खाया है।

सुचेता—(हँसकर) कहते हो अन्न खाया है ! किन शब्दों में समझाऊँ तुम्हे ?—

करीम—क्या आवश्यकता है बताने की ? क्या वह नहीं समझता ? सब समझता है वह। अरे बाबा तुम पुरुष हो; यह स्त्री है। तुम लोगों में अपवित्र हो जाती है तो स्त्री—पुरुष नहीं। विधर्मी रखेली के सहवास से भ्रष्ट हुआ है कभी कोई पुरुष ?—(सुचेता से) चलो बेटी, देख लिया न अपना घर ? यह भाई मिल गया न ? वह भाई घर पर नहीं था यह भी अच्छा ही हुआ। चलो अब, तुम्हारा घर बदल गया है फिर भी मेरे घर तुम्हें स्नेह की कमी अनुभव नहीं होगी। चलो बेटी।

राखाल—ठहरिये। वह जो था उसने कैसे छोड़ा इसे ?

करीम—वैसे वह बहुत भला आदमी था। वह इसे न छोड़ता पर मैंने उसकी आँखों में धूल झोंक दी। उससे धोखा किया। कहा पीर के दर्शन के लिए ले जा रहा हूँ—जाने दो। उतना भी मुझे चुभ रहा है। वह गाली दे रहा होगा मुझे। बड़ी मुहब्बत हो गई थी उसे इससे—

राखाल—(अट्टहास करके) मुहब्बत !

करीम—इससे पूछलो।

सुचेता—ठीक है यह।

राखाल—और तुम्हें भी मुहब्बत हो गई थी उससे।

करीम—(चिल्लाकर) राखाल !

सुचेता—यह बात होती तो क्यों आती इस प्रकार भागकर ?

करीम—चलो अब। (उसे लेकर जाने लगता है। तभी अन्दर से

जगदीश आता है और उसे देखकर दरवाजे में ही ठिठक जाता है।)

राखाल—देखिए—करीम चाचा ले आए हैं इसे लाहौर से।

जगदीश—(उसका लिबास देखकर चिल्लाते हुए) पहले बाहर हो इस घर से। लाहौर से लाए हैं! एक महीना थी वहाँ। अब इस घर में आने का उसे अधिकार नहीं रहा।

राखाल—उसकी शादी हो गई थी।

जगदीश—(चिल्लाकर) शादी? (क्रोध से) बाहर निकलो—पहले बाहर निकलो। क्षण भर भी न रहो यहाँ।

करीम—मैं ले ही जा रहा था उसे। क्यों क्रोध कर रहे हो? एक बेटी के लिए जगह है मेरे घर में। चलो बेटी। (जगदीश करीम चाचा की ओर देखना भी नहीं चाहता। वह क्रोधावेश में तड़ाक से अन्दर के दरवाजे तक जाता है। करीम चाचा सुचेता को लेकर दरवाजे की ओर मुड़ता है। तभी मा प्रवेश करती है। उसके शरीर पर के कपड़े फटे हुए हैं। आँखें अन्दर धँस गई हैं। बाल उलझे हुए हैं। उसे देखते ही राखाल और सुचेता 'मा' कहकर चिल्ला पड़ते हैं। तभी जगदीश घूमकर देखता है और सुन्न-सा अकड़ा खड़ा रहता है। करीम चाचा सुचेता को लिये मा के पास आता है। वह दरवाजे में ही खड़ी हुई है।)

करीम—भाभी, आगई? कहाँ थीं?—कहाँ से आई हो?

[इस बीच सुचेता मा से जाकर लिपट जाती है। राखाल उसके पैरों पर गिर पड़ा है। जगदीश उसी प्रकार अकड़कर खड़ा है।]

मा—(सुचेता को सीने से चिमटाती हुई) मेरी ही हो गई है यह अब—सुना? मैं कह रही थी कि मैं वृद्ध हूँ—मुझे डर नहीं—मुझे डर था तो इन दोनों लड़कियों का। लेकिन मदोन्मत्त की नजर में जवान-बुढ्ढी में भेद नहीं होता, यह मैंने उस दिन जाना! भ्रष्ट हो गई हूँ मैं! कौनसा ऐसा पाप किया था मैंने जो इस बुढ़ापे में मुझ पर इस प्रकार का अत्याचार हुआ?

राखाल—(उठकर) मा!

मा—हाँ बेटा, किस मुँह से तुम्हें 'अपना बेटा' कहूँ ? अब मैं तुम्हारी कोई नहीं । तुम्हारी मा मर गई—उसी दिन मर गई । यह जो देख रहे हो यह तुम्हारी मा का भूत है !

राखाल—(बड़बड़ाता हुआ) यही इसने भी कहा था···

मा—मैं सब कुछ जान गई हूँ । सुना बड़े दादा, आपही के घर गई थी मैं । वहीं मुझे पता लगा इसका ।

करीम—चलो, अब दोनों मेरे घर चलो । यहाँ तुम्हारे लिए जगह नहीं ।

राखाल—कौन कहता है मेरी मा के लिए इस घर में जगह नहीं ? बताओ दादा, इस प्रकार मुर्दे-से खड़े क्या देख रहे हो ? बोलो ! इस घर में मेरी मा के लिए स्थान नहीं है ? **(जगदीश शान्ति से नकारात्मक गर्दन हिलाता है)** मा के लिए जगह नहीं यहाँ ? मा के लिए ? चांडाल हो—अधम हो—उन शैतानों से भी अधिक अधम हो तुम । जिसने तुम्हें पैदा किया, पाला, पोसा, ममता का आश्रय दिया, उसके लिए जगह नहीं कहते हुए जीभ क्यों नहीं गल पड़ती तुम्हारी ? **(जगदीश गर्दन घुमाकर एक कोने में जाकर खड़ा हो जाता है)** चलिए करीम चाचा, मैं भी आपके साथ चलता हूँ । जहाँ मेरी मा होगी वहीं मैं भी हूँगा । जहाँ मेरी मा के लिए स्थान नहीं वहाँ मैं क्षण भर के लिए भी नहीं ठहरूँगा । चलो मा ।

करीम—जगदीश !**(जगदीश चुप है)** जगदीश ! देखते भी नहीं मेरी ओर ?

जगदीश—**(उसकी ओर बिना देखे ही)** जिसने मेरे घर का सत्यानाश किया—मेरी मा, बहन, स्त्री की इज्जत ली—मेरी पत्नी ! **(रुआँसा हो कर)** अब कहाँ रही वह मेरी पत्नी ! जिन शैतानों ने मेरे घर का सत्यानाश किया उन शैतानों के भाई-बंदों का इस घर में पैर न रखना ही उचित है ।

करीम—सुना राखाल ? सुना भाभी ? सुना बेटी ? मुझे उन लोगों

का भाई-वंद कहता है ! उनका भाई-वंद होता तो क्यों दौड़ा जाता लाहौर ? क्यों लाता इसे वहाँ से छुड़ाकर ?

जगदीश—(दाँत पीसकर) क्यों लाए इसे यहाँ ?

करीम—भूल हुई मुझसे !—नहीं नहीं, भूल क्यों कहूँ भली भाँति विचार करके लाया हूँ यहाँ। तुम्हारे लिए नहीं लाया हूँ मैं उसे···

जगदीश—तो किस लिए लाए ? वहू वनाने के लिए ?

राखाल—चांडाल हो···

करीम—चुप रहो राखाल ? वह तुम्हारा भाई है—वड़ा भाई है, अपने कर्मों के लिए वह जिम्मेदार है । तुम अपनी मर्यादा से वाहर न जाओ। वहुत हुआ ! चलो अव। (अजित प्रवेश करता है। उसे देखते ही सुचेता हल्की-सी चीख मारती है। मा और राखाल अजित के नाम से पुकार उठते हैं। जगदीश एक क्षण के लिए गर्दन मोड़कर उसकी ओर देखता है और तत्क्षण मुँह मोड़ लेता है । अजित के पीछे-पीछे अवला प्रवेश करती है। उसकी भी दयनीय दशा है। वह वहुत ही धीमे-धीमे पर गम्भीर मुख-मुद्रा से अन्दर प्रवेश करती है। उसे देखकर जगदीश के अतिरिक्त अन्य सभी चिल्ला पड़ते हैं।)

करीम—वहू !

मा—वहू !

राखाल—भाभी !

सुचेता—भाभी ! (दौड़ती हुई जाकर उसे आलिंगन में भर लेती है और सिसकने लगती है । सिसकियाँ भरते समय 'भाभी, भाभी, मेरी भाभी' इस प्रकार वड़वड़ाती रहती है।)

अवला—(सुचेता का उसी प्रकार आलिंगन किये हुए) इस अजित की कृपा से आज फिर एक वार मैं घर देख पाई हूँ। अपना घर देख पाई हूँ कहने जा रही थी—पर वह शब्द ही नहीं निकल पाया मुँह से। अपना कहने के लिए क्या वचा है अव !

मा—कहाँ मिली यह भाई तुम्हें ?

अजित—दिल्ली में ! (रुआँसा होकर) भीख माँग रही थी दिल्ली की सड़कों पर ! पहले पहिचाना नहीं—इन्होंने हाथ फैलाया तो जेब से नोट निकालकर हाथ पर रख रहा था। आँख से आँख मिली—फौरन पहचान लिया—(एक दम सिसकी आने के कारण वह बोलते-बोलते रुक जाता है।)

जगदीश—(दाँत पीसकर) यह अशुभ रोना-धोना न करो अब मेरे घर में। निकल जाओ यहाँ से।

राखाल—अभी तो याद किया था न उसे ?

जगदीश—हाँ, मैंने कहा था, अब कैसी मेरी पत्नी ! वही अब भी कह रहा हूँ—अब कैसी मेरी पत्नी ! मा, पत्नी, बहन, भाई इन सब से अधिक मेरा धर्म मुझे प्रिय है।

राखाल—जिस समय दरवाजा बन्द करके भीतर से साँकल चढ़ा ली थी उस समय कहाँ था तुम्हारा धर्म ?

जगदीश—धर्म का ही पालन कर रहा था मैं उस समय—'आत्मानं सततं रक्षेत्, दारैरपि धनैरपि।'

अन्नदा—सुना ? सुना अजित ? इसीलिए नहीं आ रही थी मैं।

राखाल—(अजित से) ये नहीं आ रही थीं ?

अजित—नहीं।

राखाल—सुचेता भी नहीं आ रही थी; पर उसका कारण था। उसका विवाह हो गया था—

अजित—विवाह हो गया था ?

राखाल—हाँ, एक बड़े भावुक आदमी के साथ विवाह हुआ था उसका। बहुत प्रेम करता था उससे !—क्यों न चाचा जी ? (अजित एकदम कुछ कदम पीछे हट जाता है) घबरा गए ? अरे, कैसा वह विवाह ! लाहौर की सीमा पर विलय हो गया वह विवाह ! क्यों न दीदी ? अब वह अजित आ गया है, अब उससे तुम्हें न ले जाने के लिए कोई न कहेगा—ठीक है न दादा ? देख लो—दादा कुछ नहीं बोल रहे

हैं। मौनं संमति लक्षणम् ! मनुस्मृति में ही कहा गया है न यह ? आप का धर्म क्या कहता है चाचा जी ?

करीम—दिमाग ठिकाने रखकर बोलो राखाल ! दिमाग शान्त रख कर बोलने का अवसर है तो यही।

राखाल—क्षमा कीजिए मुझे।

जगदीश—(दोनों हाथों से कसकर सिर पकड़ता हुआ) सिर फटने वाला है मेरा अब। क्यों सता रहे हैं आप सब लोग मुझे ? क्यों मेरी धज्जियाँ उड़ा रहे हैं ? क्या बिगाड़ा है मैंने आप लोगों का ?

अबला—(आगे बढ़कर) दरवाजा बन्द कर लिया था। समझे ? दरवाजा बन्द कर लिया था ! मा, बहन, पत्नी—तीनों अत्याचारियों के हाथ लगी थीं—वे चीख-चीखकर पुकार रही थीं—दरवाजा पीट रही थीं—उस समय उनकी इज्जत ली जा रही थी—दरवाजे के पीछे मर्द के समान आप जैसे हट्टे-कट्टे मर्द के जीवित होते हुए आपकी बहन का और पत्नी का अपमान हो रहा था, फिर भी आपने द्वार नहीं खोला—उन्हें भीतर न लिया। दुर्बल स्त्रियों को शरण देकर उनकी रक्षा करने की अपेक्षा आप एक कायर की भाँति मुँह छिपाये घर में बैठे रहे ! यह हमारी विडम्बना किसने की ?—उन लोगों ने ?—नहीं—सुना ? आपने की यह हमारी विडम्बना। आपने हमारा धर्म डुबो दिया। आपने हमारी जात डुबो दी। दर-दर की ठोकरें खाकर भीख माँगने की नौबत आई तो आप ही के कारण। क्या यही आपकी धार्मिकता है ? किस धर्म में कहा है यह ? कमजोर स्त्रियों को खाई में ढकेलकर अपनी जान बचाना चाहिए ऐसा कहा गया है आपकी मनुस्मृति में ? यह कहा है आपके गीता-पुराणों ने ? किस धर्म में कहा है यह ?—(एकदम फूट-फूटकर रोने लगती है और जाकर जगदीश के पैरों पर झुक पड़ती है। वह उसके स्पर्श से बचने के लिए पीछे हटता है।) क्षमा कीजिए ! क्षमा कीजिए ! कलेजा फट रहा था इसलिए जबान चलाई मैंने। आप मेरे देवता हैं ! आप मेरे धर्म हैं ! आपका अपमान करने वाली यह जीभ गलकर क्यों न गिर पड़ी !—क्षमा

कीजिए। (कहती हुई जगदीश के पैर छूने जाती है। वह ठुकरा देता है। वह तड़ाक से उठकर खड़ी हो जाती है। तीखी नजर से क्षण भर उसकी ओर देखती है और 'मा' कहकर फूट पड़ती है और दौड़कर सास के गले से लिपट जाती है।) देवता के शरण गई पर मेरे उस देवता ने मुझे ठुकरा दिया मा ! मेरे देवता ने मुझे ठुकरा दिया।

करीम—चलो बेटी, आँखें पोंछ लो और मेरे साथ चलो।

मा—चलो बच्चो, इस घर का सहारा टूट गया। अब एक ही आधार है—परमेश्वर।

राखाल—नाम न लो उस परमेश्वर का···

मा—चुप रहो। जिसने मारा उसी ने तारा। स्वामी रामकृष्ण के यह वचन याद हैं न तुम्हें ?—चलो।

सुचेता—ठहरो मा, (अजित के पास जाकर) मैं तुम्हारे पैर छूऊं तो कोई हर्ज तो नहीं है अजित ? (वह उसके पैर छूने लगती है। वह पीछे हटता है।) तुम, तुम भी पीछे हटते हो ? तब गले में हाथ डाले थे; अब पैर भी न छूऊँ मैं तुम्हारे ? (वह फिर उसके पैरों पर मस्तक टेकने जाती है। मा आगे बढ़कर उसे उठा लेती है और उसे सीने से चिपटा लेती है।) ठहरो मा, मुझे उनके मुँह से सुन लेने दो। बोलो न अजित, क्या करूँ मैं ? कहाँ जाऊँ ?

अजित—क्या उत्तर दूँ मैं ?

अबला—तुम्हारे अन्दर का ईश्वर तुमसे क्या कहता है अजित ?

राखाल—बोलो अजित, इसे अपनाओगे ?

अजित—पर-स्त्री—यह पर-स्त्री !

अबला—नहीं, यह पर-स्त्री नहीं। तुम्हारी है वह—तुम्हारी मँगनी की हुई वधू है। एक तूफान उठा। उस तूफान में वह आन फँसी। क्षण भर किसी ने उसकी बाँह पकड़ी—दया से नहीं, ममता से नहीं, प्रेम से भी नहीं—सुन्दर देह के लोभ के कारण किसी ने उसकी बाँह पकड़ी, उस हाथ को झिड़ककर वह अब तुम्हारी शरण आई है। क्या करोगे अब ?

अजित—मुझे क्षमा कीजिए। मैं अपने धर्म से डर रहा हूँ। मन कहता है, अजित, यह तुम्हारी ही है। यह तुम्हारी ही थी—आज भी वह तुम्हें छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं जायगी··· (रुकता है।)

सुचेता—बोलो, बोलो अजित, आगे कहो।

अजित—(गर्दन हिलाकर) नहीं—वह नहीं हो सकता। घर छोड़ना पड़ेगा मुझे।

करीम—एक दीन-दुखिया लड़की के कल्याण की अपेक्षा घर-बार का अधिक विचार है तुम्हें? (अजित चुप रहता है) लाहौर की सड़कों पर दिन-रात भटककर मैंने इसे खोज निकाला इस उम्मीद से कि तुम उसे आश्रय दोगे। कितनी बढ़-बढ़कर बातें कर रही थी वह मुझसे तुम्हारे बारे में! कितना विश्वास है उसका तुम पर! इस विश्वासी जीव के साथ विश्वासघात करोगे तुम?

अजित—नहीं चाचाजी, मैं दुर्बल हूँ, मैं डरपोक हूँ—पाप-भीरु हूँ···

करीम—वह देखो एक दुर्बल पाप-भीरु वहाँ बैठा है! उसकी पाँत में बैठकर खाना है तुम्हें? उसने लात मारी अपनी पत्नी को—यह तुमने देखा? कैसा लगा तुम्हें उस समय?

अजित—सिर भिन्ना उठा मेरा। क्रोध आया—बड़े जानकर मैं चुप रहा नहीं तो···

राखाल—नहीं तो क्या करते? तमाचा लगाते उसे? बोलो न, क्या करते तुम?

अजित—कुछ नहीं किया मैंने! सारा क्रोध पी गया। बड़ों का अपमान करना अधर्म है—वह अधर्म करने का हौसला मुझे नहीं हुआ।

मा—और इसीलिए ना कह रहे हो इसे? धर्म डूबेगा तुम्हारा? जाति डूब जायगी? घरबार डूब जायगा? और इससे अधिक क्या होगा? आज कितनों ने ही धर्म डुबा दिया है—जात डुबा दी है—सुन्दर चेहरे के मोह में पड़कर जिन्होंने सर्वस्व ठुकरा दिया—क्या बिगड़ा उनका? सुख से रह रहे हैं। तुम्हारा संसार भी सुखमय होगा···

अजित—कौन कह सकता है !

करीम—व्यर्थ इस बतंगड़ से प्रयोजन ? जो हुआ, बहुत हुआ। बोलो अजित, इसे स्वीकारते हो ? (अजित स्तब्ध रहता है) सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं ! क्या भूत दया की अपेक्षा भी धर्म बड़ा है ? इन्सानियत से भी बड़ा है ? अजित, मेरी सुनो···

सुचेता—(झल्लाकर) क्यों उन्हें मना रहे हैं आप ? क्यों लाए मुझे ? अच्छी सुख से थी। जरा भी कष्ट नहीं दिया था उसने मुझे। ऐसे भीरु लोगों का आधार लेने की अपेक्षा···(बौखलाकर) चलिए चाचा जी, मुझे लाहौर पहुँचा दीजिये। मेरा जो कुछ होना होगा, वहीं होगा। हमें भ्रष्ट उन्होंने नहीं किया, ये भ्रष्ट कर रहे हैं। यह मेरा भाई—यह मेरा पति—मेरा वचनबद्ध पति !

अबला—ठहरो दीदी। (अजित से) यही देखने के लिए क्या तुम मुझे दिल्ली से यहाँ लाए थे ? मैं भीख माँगती थी। मेरी दयनीय दशा देखकर राही दाता लोग पैसा दो पैसे फेंक देते थे मेरी ओर। मा-बहनें मुट्ठी भर नाज डाल देती थीं मेरे आँचल में—कोई कोई तो खाना भी खिला दिया करती थी। उस दयनीयता के हिमालय के नीचे दबकर घरबार भूल गई थी इसीलिए सुखी थी मैं। उस मेरे सुख से दुरा कर जो तुम मुझे यहाँ लाए हो वह क्या यही देखने के लिए ? मेरे पति ने मुझे ठुकरा दिया, यह देखकर तुम्हें क्रोध आया, कहते हो। और तुम स्वयं यह क्या कर रहे हो ? कैसा धर्म लिये बैठे हो ? गान्धीजी ने क्या बताया है ? धर्म-गुरुओं ने क्या कहा है ? अपहृत स्त्रियाँ निष्पाप हैं बताने वाले, नोआखाली के लिए इस आग में कूदने वाले, इस आग को बुझाने वाले उस महात्मा के शब्दों का इस प्रकार निरादर करते हो ? किस नरक की तैयारी करके रख रहे हो ? (अजित एकदम रुआँसा होकर अबला के पैर पकड़ता है।)

अजित—क्षमा करो भाभी, मुझे क्षमा करो। मैं उस महात्मा को भूल गया था। तुमने उसका नाम लिया और मुझे धैर्य बँधा। (मा के

पैर पकड़कर) क्षमा करो मा, उस महात्मा के नाम पर आप सब लोग क्षमा कीजिए मुझे। आज से सुचेता मेरी है। उसका हाथ मेरे हाथ में पकड़ाइये।

मा—(गद्गद् होकर) धन्य है वह महात्मा जिसके नाम के उच्चारण-मात्र से धर्म के डर से पत्थर बना हुआ तुम्हारा कलेजा[1] पसीज उठा। महात्मा का आशीर्वाद तुम्हारा कल्याण करे। (सुचेता का हाथ वह अजित के हाथ में थमा देती है।) पत्थर की तरह क्यों बैठे हुए हो जगदीश ? देखो, इधर उस महात्मा के नाम का प्रभाव देखो !

राखाल—क्यों व्यर्थ अमूल्य शब्द गमा रही हो मा ? काला पत्थर कभी भी नहीं पसीजता—अब कहाँ जाओगी मा ?

करीम—मेरे यहाँ।

मा—नहीं बड़े दादा, अब इस गाँव में रहना मेरे लिए सम्भव नहीं। मैं भीख माँगती थी, मेरी वहू भी भीख माँगती थी। भीख माँगने की आदत है हमें। इस पूर्व बंगाल की सीमा लाँघने के बाद हमें भीख माँगने में शर्म न लगेगी। चलो वहू।

[अबला का हाथ पकड़कर एकदम चली जाती हैं। 'मा !' 'मा !' कहता हुआ राखाल उसके पीछे दौड़ता है। अजित करीम चाचा के पैरों पर मस्तक रखता है। उसके बाद सुचेता भी नमस्कार करती है। दोनों उठ कर जाने लगते हैं।]

करीम—ठहरो (जगदीश की ओर अँगुली से इशारा करके) उसे भी यहाँ से नमस्कार करो। इस भूमि को—इस नोआखाली की भूमि को नमस्कार करो और सीमा पार कर जाओ।

[अजित और सुचेता जगदीश को लक्ष्य करके नमस्कार करते हैं। सुचेता जमीन पर से धूल उठाकर माथे पर लगाती है। दोनों जाते हैं।]

जगदीश—(एकदम भड़ककर) चला जा यहाँ से बुड्ढे।

करीम—(चुपचाप तसवीर की ओर अँगुली से इशारा करके) वह सुन रहा है जगदीश !

जगदीश—मुझे पर्वाह नहीं है उसकी (तसवीर उतारकर नीचे फेंक देता है और पैर से कुचलने के लिए पैर उठाता है। करीम चाचा आगे वढ़कर उसका पैर पकड़कर उसे पीछे खींचता है। वह करीम चाचा का कन्धा पकड़कर उसे वाहर ढेलता हुआ कहता है...)

जगदीश—निकलो यहाँ से। इसके वाद इस घर में कदम भी न रखना कभी। मुझे अव किसी की भी पर्वाह नहीं रही। अव मैं सव वन्धनों से मुक्त हो गया हूँ। (विकट अट्टहास करता है) विध्वंस! विध्वंस! चारों ओर विध्वंस! (अट्टहास करता हुआ तख्त पर शरीर छोड़ देता है और फूट-फूटकर रोने लगता है।)

[पर्दा गिरता है]

चौथा अंक

[स्थान—कलकत्ते की सँकरी गलियों की घनी वस्ती का एक वेश्या-गृह। फर्श पर चाँदनी विछी है। मसनद-तकिए रक्खे हुए हैं। पानदान, पीकदान, हुक्का तरतीव से रक्खे हैं। हारमोनियम ग्रौर तवला कोने में रक्खा हुग्रा है। चार-पाँच रँगीले सज्जन पान खाकर-पीकदानी में पीक थूक रहे हैं।]

एक व्यक्ति—ग्ररे वाईजी कहाँ हैं ? कोई ग्रन्दर है या नहीं ? वाईजी की जात को इतनी ग्रकड़ किसलिए ?

दूसरा—हाँ, ग्राना हो तो ग्रायें कहो, नहीं तो हम दूसरी जगह जाते हैं। ग्ररे कोई है या नहीं भीतर ?

[वाईजी वाहर ग्राती है। वह ग्रवला हैं। उसकी वेशभूषा वदली हुई है। सलवार, कुरता, कन्धे पर दुपट्टा, केश-विन्यास विचित्र प्रकार का, चेहरे पर 'मेक-ग्रप' किया हुग्रा, गालों पर सुर्खी, ग्रोंठ लिपस्टिक से रंगे हुए, ऐसे ठाठ-वाट से झुककर सलाम करती हुई वाहर ग्राती है।]

ग्रवला—ग्रादाव ग्रर्ज, ग्रादाव ग्रर्ज ! माफ़ कीजिएगा, ज़रा देर हो गई मुझे। (सव एक साथ 'वाह वाईजी !' 'वाह वाईजी !' कहते हुए सिर हिलाने लगते हैं।)

ग्रवला—देर होने के कारण नाराज़ हो गए हैं शायद ?

दूसरा—नहीं, नहीं विल्कुल नहीं—विल्कुल नहीं। पर गाना ऐसा लाजवाव होना चाहिए कि सुनते ही वने !

ग्रवला—जो सेवा मुझसे वन पड़ेगी उसी को वहुत मान लेना चाहिए वड़े लोगों को !

[फिर एक वार झुककर सलाम करके ग्रवला एक ग्रोर कालीन पर बैठ जाती है ग्रौर गाने लगती है। गाना समाप्त होते ही सव लोग 'वाह

वाह बाईजी' के नारे लगाते हुए तालियाँ पीटने लगते हैं। एक व्यक्ति जेब में से नोट निकालकर आगे बढ़ाता है। अबला उठकर सलाम करती है और सामने रक्खी हुई नक्शीदार थाली की ओर इंगित करती है।]

एक व्यक्ति—लीजिए न।

अबला—उस थाली में रख दीजिए।

व्यक्ति—थाली में रखने के लिए नहीं है यह, हाथ में ही लेना चाहिए।

अबला—फिर रहने दीजिए वह अपने पास। मेहमान घर आए। मैंने उनका मनोरंजन किया मैं यही समझ लूँगी।

दूसरा—इतनी अकड़ ! तुच्छ बाईजी में इतनी अकड़ !

अबला—यह मेरा रिवाज है कि पैसे किसी से हाथ में नहीं लेने।

एक व्यक्ति—हाथ में नहीं लेना ?

अबला—नहीं।

एक व्यक्ति—(औरों से) तो चलो। एक क्षण भर भी नहीं बैठेंगे अब हम यहाँ। इस कलकत्ते में क्या बाइयों की कमी है ?

अबला—तो जाइये वहाँ।

दूसरा—बाईजी का मुँह तो देखो।

पहला—देखने में मुँह तो अच्छा है पर जबान बड़ी तीखी है बाईजी की। इतनी पवित्रता रखनी थी तो क्यों आई इस बाईजी के पेशे में ? कहो शादी करके किसी के घर जाकर रहे। चलो जी !

दूसरा—अरे, एक नोट फेंक दो उस थाली में। आखिर नीति भी तो कोई चीज है न ?

पहला—सच ! (जेब से नोट निकालकर थाली में फेंकता है। वह नोट उठा लेती है।)

अबला—देवी लक्ष्मी का अपमान होगा—अन्यथा यही नोट फिर आप पर फेंकती।

दूसरा—हमारे हाथ का नोट लिया या नहीं तुमने हाथ में ? क्यों ?—

(एक के हाथ पर ताली पीटकर) आखिर जीत हमारी ही हुई।

अबला—आदाब अर्ज।

एक—दिमाग़ देखिए बाईजी का!

[सब लोग जोर-ज़ोर से हँसते हुए 'वाह री बाईजी' की आवाजें कसते हुए चले जाते हैं। अत्यंत खिन्नता से हाथ में के नोट की ओर देखती हुई वह जाने लगती है तभी मण्टू प्रवेश करता है।]

अबला—(तत्काल पीछे मुड़कर) कौन—मण्टू बाबू? क्या है?

मण्टू—क्या हो सकता है और? एक गाहक।

अबला—गाहक! गाहक! क्यों कहते हो यह शब्द? श्रोता कहो न—दर्शक कहो! गाना सुनाऊँ तो सुनेगा, नाचूँ तो देखेगा—बस! (निश्वास छोड़कर) बस! हाथ में से नोट न लेने के कारण अभी-अभी नाराज़ होकर गए हैं लोग! निदान हाथ से हाथ लगाना चाहते थे, क्या है उसमें विशेष?

मण्टू—वह पुरुष जानता है! हाथ से हाथ छूने पर—बाईजी का हाथ छू लिया—तो बहुत से लोग समझते हैं कि उन्हें स्वर्ग मिल गया। अब मैं जिसे ला रहा हूँ वह—(क्षण भर रुककर)—बहुत उतावला हो रहा है वह! बड़ा मालदार है—जमींदार है—नोटों का पुलिंदा रखकर आया है जेब में।

अबला—ऐसे लोग बड़े भयंकर होते हैं!

मण्टू—भयंकर होते हैं यह सच है, पर उल्लू बनाने के लिए अच्छे होते हैं ऐसे बन्दर। ज़रा दिमाग से काम लीजिएगा तो साल भर की वसूली एक ही बैठक में हो जायगी। नाच-गाने में उसकी विशेष रुचि नहीं दिखाई देती।

अबला—तब किस लिए आया है?

मण्टू—क्या वह बताने की जरूरत है?

अबला—यहाँ केवल नाच-गाना ही होगा—समझे? केवल नाच-गाना।

मण्टू—क्या मैं यह नहीं जानता? पर मैं यदि उन्हें यह बताने लगूँ तो

वे इस जीने की सीढ़ी पर भी पैर नहीं रक्खेंगे। जो कहना चाहिए वह मैं अपने ढंग से कहूँगा। यदि न कहूँ तो कोई भी यहाँ नहीं आयगा। इसके आगे जो करना हो वह आप अपने आप निबट लीजिए।

अबला—बड़ी कठिन परीक्षा लग रही है यह मुझे। न जाने उससे कैसे पार पाऊँगी ?

मण्टू—इस जगह रहकर शील बनाए रखना—आसान नहीं है यह काम। मैं भी पूर्व बंगाल का—इसी प्रकार—शरणार्थी हूँ। पढ़ा-लिखा न था पर पैसे तो चाहिए थे न जिन्दा रहने के लिए इसलिए यह पेशा अपनाया। आप जैसी मा-बहिनों की मदद करने का अवसर मुझे ईश्वर ने दिया **(आँखों का पानी पोंछकर)** लेकिन ये सुन्दर अवसर हाथ से न जाने दीजिए। अच्छा मालदार है। पहले रुपये निकाल लीजिए उससे और रुपये हाथ आते ही निकाल बाहर कीजिए ठोकर मारकर! अपनी स्त्रियों की रक्षा तो कर नहीं पाते और अब आए हैं कलकत्ते में बाईयों के घर ढूंढ़ते।

अबला—उधर ही का रहने वाला है वह ?—यानि हमारे देश का ?

मण्टू—देश का ही नहीं, आपके ही गाँव का भी। चौमोहानी का ही है वह—**(वह चौंकती है।)** कहीं का भी क्यों न हो, अपना मतलब पैसे से है! अच्छा-खासा नोटों का पुलिंदा है बच्चा की जेब में। नोट ले लीजिए और निकाल दीजिए उसे धक्का मारकर बाहर।

अबला—और उसने पुलिस में रिपोर्ट की तो मण्टू बाबू ?

मण्टू—पुलिस में रिपोर्ट करने वाले यहाँ नहीं आया करते—समझीं ? नीचे खड़ा करके आया हूँ उसे। यहाँ मैं अधिक देर ठहरा तो उसे शक होगा। बहुत ही उतावला हो रहा है बच्चा। देर होने से साफ निकल जायगा हाथ से। तैयार रहिएगा, हाँ!

[कहता हुआ मण्टू चला जाता है। अबला क्षण भर के लिए सुन्न-सी खड़ी रहती है। हाथ में के नोट की ओर फिर एक बार देखती है और अन्दर जाती है। जगदीश को लिए मण्टू अन्दर आता है। अन्दर से आते हुए

जगदीश बोलता है और बात करते करते कमरे में प्रवेश करता है।]

जगदीश—(अन्दर से) बिल्कुल उकता गया था मैं। जाने ही वाला था। ऐसी जगह कब तक कोई खड़ा रहे? अच्छा हुआ जो तुम आ गए। (कमरे में आता है, चौंककर चारों तरफ देखता है।)

मण्टू—तुम जैसा बड़ा आदमी आने वाला था, फिर चाँदनी नहीं बिछानी चाहिए थी क्या?

जगदीश—(गड़बड़ाकर) यह तुम्हारा घर है?

मण्टू—अरे, तुम्हारा क्या और मेरा क्या? हम क्या दो हैं? यहाँ बैठो। बिल्कुल अपना घर समझकर बैठो। (जगदीश बैठ जाता है) पान लो न। (पान की तश्तरी आगे बढ़ाता है।)

जगदीश—और यह यहाँ तबला, हारमोनियम···

मण्टू—मेरे ही हैं वे, मुझे ज़रा शौक है।

जगदीश—तो क्या आजकल गाने की मेहफिलें किया करते हो?

मण्टू—वैसे देखा जाय तो बहुत से काम किया करता हूँ। जीना है न? हजारों का उलट-फेर किया करता हूँ शेयर बाजार में। अच्छा हुआ जो चाँदपुर छोड़कर आ गया नहीं तो वहीं कहीं मास्टरी करता हुआ इस दंगे में मर भी जाता। उन निखिल बाबू ने बताई तुम्हारे उधर की हालत। सब सत्यानाश हो गया न? कहते हैं घर की औरतें भी नहीं बचीं! शुरू से यहाँ कलकत्ते में रहते तो आज ऐशोआराम से होते।

जगदीश—बाप-दादा की जमींदारी छोड़कर यहाँ कैसे आ सकता था? (निश्वास छोड़कर) अब उससे क्या! जमींदारी है, जमीन-जायदाद है, रुपया है, घरबार है—पर एक भी मनुष्य नहीं है घर में। (क्षण भर रुककर) ऊब उठा और इधर चला आया। अजीब है यह तुम्हारा कलकत्ता। बचपन में एक बार आया था—राह में कसम खाने के लिए औरत जात नहीं दिखाई देती थी। अब देखता हूँ तो जवान जोड़े हाथ में हाथ डाले हुए सड़कों पर फिरते रहते हैं!

मण्टू—यह सब तुम्हारे उस गांधी ने किया। बंगाली घर की लड़कियाँ कायदा भंग करने के लिए सड़क-सड़क पर घूमने लगीं—और अब यह रास्ता ही उनके लिए खुल गया है। सच, वह गांधी तो गया था न तुम्हारी ओर? लेकिन सचमुच आदमी विचित्र है! नोआखाली में उसके जाते ही सारे दंगे बन्द हो गए। देखा था तुमने उसे?

जगदीश—वैसे सड़क पर चलते हुए उसे देखा था। घर का विध्वंस होने के समय से मैं घर के बाहर ही नहीं निकलता था। अब यहाँ आया हूँ—बराबर भटक रहा हूँ—और अब यह हाल है कि—(ठहरता है।)

मण्टू—क्या हाल है? पैसे खतम हो गए पल्ले के?

जगदीश—नहीं जी। भरपूर पैसे हैं जेब में—और दुख है तो इसी बात का। यहाँ की सड़कों पर परस्पर प्रेम-भरी बातें करते हुए जोड़ों को जाते देखता हूँ तो—जाने दो! बड़ी प्रेममयी थी मेरी पत्नी! चली गई...

मण्टू—मर गई? कब?

जगदीश—मरी नहीं—मर जाती तो भी अच्छा था—चली गई! ले गए वे चांडाल! एक दिन भी उससे अलग नहीं रहा था। और अब जो स्थिति है वह कैसे बताऊँ तुम्हें?

मण्टू—मैं उसकी कल्पना कर सकता हूँ। ऐसी ही एक मेरी भी थी। वह कहीं भाग गई। उस समय मैं भी व्याकुल हो उठा था तुम जैसा।

जगदीश—फिर क्या किया तुमने?

मण्टू—भोजनालय जाने लगा। रोज नया भोजनालय! पहले-पहल रुचि-तब्दीली हुई, अब आदत पड़ गई है।

जगदीश—क्या कर रहे हो?

मण्टू—चौमोहानी में रहकर नहीं समझते। अरे भाई, यह मधुकरी ही अच्छी है!

जगदीश—मुझे नहीं जँचती यह बात।

मण्टू—तो शादी करो। मैं तुम्हारी शादी करवा देता हूँ।

जगदीश—पर यहाँ की लड़की चौमोहानी जाएगी ?

मण्टू—यहाँ का कुत्ता भी अब वहाँ न जाएगा। पर मैं कहता हूँ शादी की ही क्या आवश्यकता है ? गाँव जाओगे तो कर लेना शादी। तब तक मैं यहीं तुम्हारी व्यवस्था कर देता हूँ।

जगदीश—नहीं, नहीं !...

मण्टू—नहीं, नहीं क्या ? भूख लगे तो मनुष्य को खाना खाना ही चाहिए। इस प्रकार उपवास करके शरीर मरता है और मन भी मरता है। मनुष्य को मन पर ज्यादती नहीं करनी चाहिए। एक रंगीला स्थान पक्का कर देता हूँ मैं। पैसे हैं ही तुम्हारे पास कहते हो। एक बार तुम्हारी और उसकी जम जाय फिर तो तुम चौमोहानी का नाम भी न निकालोगे मुँह से।

जगदीश—नहीं, नहीं, ऐसी बातें न करो। यह देखो मेरी छाती धड़कने लगी। नहीं, नहीं, चाहिए ही नहीं वह !

मण्टू—जब कोई ना, ना, कहने लगे तो समझना चाहिए कि अवश्य उसमें हाँ है। छाती धड़कने लगी कहते हो ! आखिर तुम भीरु ही ठहरे।

जगदीश—क्या कहा ?

मण्टू—बिल्कुल साफ-साफ कहता हूँ तुमसे—यह मर्द का लक्षण नहीं है। बिल्कुल डरपोक हो तुम !

जगदीश—(स्वगत) यही उस ने कहा था।

मण्टू—क्या कहा ?

जगदीश—कुछ नहीं। तुमने मुझे भीरु कहा—मैं भीरु हूँ—? दिखाता हूँ तुम्हें कि मैं भीरु हूँ या नहीं। पैसा गाँठ में होते हुए मुझे किसी का डर है ? कौन है वह ? ले आओ उसे यहाँ—यहीं लाओ। उसके घर भी अब नहीं जाऊँगा। चाहे जितने पैसे देने के लिए तैयार हूँ, उसे यहाँ लाओ। मैं क्यों किसी के घर जाऊँ ? क्या मैं नामर्द हूँ

या दरिद्री हूँ ? अभी हाल ले आओ उसे यहाँ।

मण्टू—(**हाथ बढ़ाकर**) हाथ मिलाओ। लाने की जरूरत ही नहीं—हम लोग आए हैं उसी के यहाँ ! यहीं है वह...

जगदीश—तुम्हारे घर में ?

मण्टू—मेरा क्या और तुम्हारा क्या ?—सभी का घर है यह। तुम चौंक पड़ते इसलिए पहले मैंने नहीं बताया था तुम्हें ! ठहरो, हाँ, बुलाता हूँ उसे।

जगदीश—वह यहीं है ?—अन्दर ? यहीं ?

मण्टू—हाँ भाई, हाँ, यहीं है। ठहरो।

जगदीश—नहीं, नहीं—जरा ठहरो।

मण्टू—क्यों घबरा गए ?

जगदीश—नहीं—वैसे घबराया नहीं हूँ—फिर भी...

मण्टू—आखिर तुम भीरु ही ठहरे।

जगदीश—(**दाँत पीसकर**) नहीं—बुलाओ उसे बाहर। तुम बैठो यहाँ।

मण्टू—(**जोर से हँसकर**) मैं ? यहाँ ? तुम दोनों के बीच में ? किस लिए भाई ?—

जगदीश—अच्छा, अच्छा, तुम जाओ—कुछ हर्ज नहीं, तुम जाओ। मैं किसी के बाप से नहीं डरता। मैं चौमोहानी का जमींदार हूँ। कौन हौसला कर सकता है मुझे बुरा कहने का ? बुलाओ उसे बाहर ! (**चिल्ला कर**) बुलाओ उसे बाहर !!

मण्टू—अच्छा, अच्छा, (**बन्द दरवाजे के पास जाता है। अन्दर झाँककर देखता है और अन्दर जाता है। जगदीश जबर्दस्ती औसान लाने के लिए वहाँ की सिगरेट उठाकर सुलगाने लगता है। मण्टू बाहर आता है**) आ रही है वह (**पीछे देखकर**) जल्दी आइए बाईजी बाबू राह देख रहे हैं। कितनी देर लगादी यह ? (**जाने लगता है**) जाऊँ मैं अब ? (**दरवाजे तक जाकर लौट पड़ता है**) एक सौ का नोट है तुम्हारे

पास ? यह देखो पाँच हजार का चेक है—पर इस रात के समय में इसे कैसे भुनाया जाय ? मैं भी ऐसी ही एक जगह जा रहा हूँ—। टूटेहुए पैसे होने चाहिएँ न जेब में ! (जगदीश जेब से नोटों का पुलिंदा निकालकर उसमें से पहले एक और फिर एक नोट निकालकर उसे पकड़ाता है।)

जगदीश—यह और एक रहने दो।

मण्टू—तुम तो बड़े दिलदार हो ! थैंक्यू, हाँ, अब इजाजत दो—सुबह आऊँगा तुम्हें लेने (नोट जेब में रखता हुआ जाता है। अबला बाहर आती है। जगदीश को देखते ही चौंकती है और दुपट्टा सर पर सरकाती है, क्षण भर देखती रहती है।)

अबला—आदाब अर्ज !

जगदीश—(उसकी ओर बिना देखे ही) आदाब अर्ज ! न, न, नमस्कार—नमस्कार !

अबला—नमस्कार ! (क्षण भर दोनों स्तब्ध। किंचित् लाडले स्वर में जोर से) नमस्कार बाबू जी !

जगदीश—नमस्कार !

अबला—क्या चाहते हैं आप—नाच या गाना ?

जगदीश—क्या चाहिए मुझे ! क्या नाच-गाना होना जरूरी ही है ? तो हो जाने दो—वही जो तुम चाहती हो···

अबला—मैं नाचती हूँ तो आपके लिए, गाती हूँ तो आपके लिए···

जगदीश—मेरे लिए ?

अबला—जी, आप ही के लिए—आप जैसे अपने मेहमानों के लिए—मालिकों के लिए !

जगदीश—(चौंककर) मालिकों के लिए !

अबला—तो क्या करूँ ? गाऊँ या नाचूँ ?

जगदीश—गाओ, नाचो, जो चाहो करो, पर जो नाच-गाना करना है वह जल्दी से निबटा लो।

अबला—बहुत अच्छा !

[नाचने लगती है। वह बीच-बीच में उसकी ओर देखता है और कुछ सोचता है। नाचते-नाचते घूंघट की ओट से वह उसकी ओर देख लेती है । गाना समाप्त होते ही अबला पानदान में से पान लेकर उससे बिल्कुल सटकर बैठ जाती है और पान आगे बढ़ाती है]

अबला—लीजिए न ! देखिए न इधर (जगदीश अकड़कर बैठा है) ऐसी क्या बात है ? लीजिए न पान । अब यहाँ कोई भी नहीं है। फूल की शैया तैयार है अन्दर। ऐसे चुपचाप क्यों हैं ? क्या यह आपका पहला ही प्रसंग है ?

जगदीश—हाँ ! (कहकर जीभ दाँतों के नीचे दबाता है।)

अबला—संकोच न कीजिए—जरा भी संकोच न कीजिए, आपही का घर है यह। जरा भी परायापन न लाइए मन में—(जगदीश स्तब्ध है) बोलते क्यों नहीं ? क्या मुझ पर नाराज हैं ?

जगदीश—नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं । याद आ गई मुझे।

अबला—किसकी ?

जगदीश—पत्नी की !—नहीं, नहीं—क्या कहा मैंने ! पत्नी की याद आई कहा मैंने ?

अबला—मृत पत्नी की याद आने से ऐसा होता ही है।

जगदीश—मरी नहीं है वह—चली गई ! लापता हो गई।

अबला—भाग गई ! किसी के साथ ?

जगदीश—नहीं, नही—वैसी नहीं थी वह । बड़ी अच्छी थी, बड़े शुद्ध मन वाली थी वह, बड़ी पतिव्रता थी···

अबला—फिर गई कैसे ?

जगदीश—गई नहीं—ले जाई गई ! मैं नोआखाली का हूँ। वहाँ जो हत्याकाण्ड हुआ है वह जानती हो न ? वे ले गए उसे—

अबला—फिर मिली नहीं ? आपने उसे नहीं ढूंढ़ा ?

जगदीश—यह बात नहीं है—मैंने उसे नहीं ढूंढ़ा—वह स्वयं आई थी—भ्रष्ट होकर आई थी, इसलिए उसे निकाल दिया (अब उसकी ओर

घूमकर देखता है।) ऐसी ही थी वह। (कण्ठ रुँध आता है) ठीक तुम—जैसी ही थी—तुम्हीं-सी ! हाँ—हू-ब-हू तुम्हारे जैसी ! (चौंक कर) लेकिन ऐसे कपड़े नहीं पहनती थी। बंगाली घर की गृहणी थी वह (सिसककर) मैंने उसे निकाल दिया !

अबला—निकाल दिया ? वापिस आने पर निकाल दिया ?

जगदीश—(दाँत पीसकर) भ्रष्ट जो हो गई थी वह ! धर्म-भ्रष्ट—कर्म-भ्रष्ट—देह-भ्रष्ट ! भ्रष्ट देह का संपर्क—नहीं, नहीं—क्या कहा मैंने ?

अबला—भ्रष्ट देह का सम्पर्क नहीं चाहिए, ऐसा ही कुछ कह रहे थे आप।

जगदीश—(उसकी ओर देखकर) यह घूँघट क्यों निकाला है तुमने ?—(फिर विस्मृति से) भ्रष्ट देह का सम्पर्क।—नहीं—नहीं मैं जाता हूँ ! व्यर्थ आया यहाँ ! भ्रष्ट देह का सम्पर्क !—जाता हूँ मैं (उठने लगता है।)

अबला—नहीं, नहीं, ऐसा भी कभी हुआ है ? बैठिए न, यह पान लीजिए। ऐसा क्यों कर रहे हैं ? पान लीजिए कह रही हूँ न ! मैं आपकी हूँ न ?—आप ही की हूँ न मैं ? आपके चरणों की दासी···

जगदीश—क्या कहा ?

अबला—आपके चरणों की दासी।

जगदीश—(चौंककर उसकी ओर देखते हुए) कौन बोला यह ?

अबला—मैं आपके चरणों की दासी !

जगदीश—तुम ! तुम कौन ?

अबला—देखिए न मेरी ओर। (वह घूँघट हटा देती है। वह उसकी ओर देखता है, चौंकता है। आँखें फाड़कर उसकी ओर देखता रहता है। वह मधुर-मधुर हँसती रहती है। फिर उठकर जैसे ही वह बार-बार मुजरा करने लगती है वैसे ही जगदीश अधिकाधिक काँपने लगता है।)

अबला—देख लिया ? (उसकी ओर देखकर हँसती है। वह और

भी घबरा उठता है । वह फिर हँसती है ।) देखा ? मुँह क्यों मोड़ रहे हैं ? देखिए न ।

जगदीश—(हकलाकर) इसी तरह वह भी हँसती थी ।

अबला—वह कौन ?

जगदीश—वह—जो अब नहीं है—इसी तरह मधुर-मधुर हँसती थी जब हम दोनों एकान्त में हुआ करते थे (यही शब्द वह बार-बार स्वगत बड़बड़ाता रहता है ।)

अबला—(धीमे से) यह हथियार है हमारा ।

जगदीश—किसका ?

अबला—हमारा ! हम जैसी बाइयों का ! देखिए न इधर । (फिर मधुर हँसती है । जगदीश फिर आँखें फाड़कर उसकी ओर अच्छी तरह से देख लेता है और फिर चिल्लाता है ।)

जगदीश—तुम ?

अबला—आप क्या समझते हैं ?

जगदीश—हाँ—हाँ—तुम ही—तुम्हीं हो वह ।

अबला—जी हाँ, मैं ही हूँ वह । पर अब मैं वह नहीं हूँ ।

जगदीश—(बड़बड़ाता है) तुम...तुम...तुम...तुम...! (ढीला पड़ कर बैठ जाता है ।)

अबला—मैं वही—यथार्थ में वही हूँ, पर अब मैं कौन हूँ यह तो जान गए न आप ?

जगदीश—नहीं...नहीं...नहीं ! उठकर जाना चाहता है पर पैर लड़खड़ाने के कारण फिर बैठ जाता है । वही ! वही !

अबला—(उसके पास आकर बैठ जाती है ।) हाँ, वही । (वह पीछे हटता है, वह फिर उसके पास जाती है और अपना हाथ उसके कन्धे पर रख देती है ।) पर अब एक वेश्या !

जगदीश—(उसका हाथ एक ओर ठेलता हुआ चिल्लाकर) साँप ! साँप ! दूर हट ! दूर हट ! नागिन !

अबला—(नाग के फन के समान हाथ हिलाती हुई) हाँ, साँप। इस साँप की लपेटन यदि एक बार पुरुष की गर्दन के इर्द-गिर्द पड़ जाय तो फिर वह दूर नहीं भागेगा। (फिर हाथ उसके गले में डालती है।)

जगदीश—(हकलाकर) हाँ, साँप ! सचमुच साँप ! (तड़ाक से उठता है। वह फौरन उसका हाथ पकड़कर उसे नीचे बिठाती है और जोर-जोर से अट्टहास करने लगती है।) राक्षसी ! डाइन ! पिशाचिनी ! दूर हो ! दूर हो ! तेरे पैरों पड़ता हूँ। भूल हुई मुझसे ! जाने दो—मुझे जाने दो। (फिर उठने लगता है और फिर वह उसे पकड़कर नीचे बिठा लेती है। वह विवश होकर बैठ जाता है)

अबला—दरवाजे पर आए गाहकों को यदि मैं लौट जाने दूँ तो मेरा गुजारा कैसे चलेगा ? मैं पैसेवाली नहीं—जमींदारिन नहीं—मैं लिखना-पढ़ना नहीं जानती। लिखना-पढ़ना जानती होती तो मैंने नौकरी की होती कहीं।

जगदीश—(मुँह ही मुँह) बोलो मत—बोलो मत।

अबला—अब न बोलकर कैसे काम चलेगा। यही समय है बोलने का।

जगदीश—तुम्हीं हो वह ? विश्वास नहीं होता मुझे ! इस जगह और तुम !

अबला—क्या आप भी नहीं आए इसी जगह ? उसी प्रकार मैं भी आई।

जगदीश—उसी प्रकार कैसे ?

अबला—नहीं तो क्या ? आप जिस लिए आए हैं वह आप जानें—पर मैं इसलिए आई हूँ कि पेट नहीं जलता ! क्या कर सकती थी मैं ? कहीं खाना पकाने का काम करके पेट भरती तो कौन मुझे अपने यहाँ काम देने लगा ? लिखी-पढ़ी तो थी ही नहीं। बचपन में कुछ नाच-गाना सीख लिया था—पड़ोस में अमीरों के बच्चे नाच-गाना सीख रहे थे उनके साथ !—जो उस समय प्राप्त किया था वह इस समय उपयोगी सिद्ध

हुआ। अकेली होती तो घर-घर भीख माँगती पर एक और भी प्राणी का भार था मेरे ऊपर। घरबार छूटा, प्रत्यक्ष पति ने घर से निकाल दिया। फिर भला मुझ जैसी सीधी गौ को इसके सिवा और चारा ही क्या रह गया था?

जगदीश—(चिल्लाकर) चुप रहो—मुँह बन्द करो?

अबला—यह क्या कहते हैं आप? जो घटित हुआ है वह आप कैसे जानेंगे? आपकी तो रक्षा होगई न? आप तो बच गए? शास्त्र-वचन सार्थक हो गया? आत्मानं सततं रक्षेत्, दारैरपि धनैरपि—आपके द्वारा ठुकराई हुई यह 'दारा' और कहाँ जाती? यही एक आधार—वेश्या-वृत्ति के अतिरिक्त और कौन सा मार्ग था मेरे लिए?

जगदीश—(स्वगत्) आत्मानं सततं रक्षेत्!

अबला—आपकी पत्नी नहीं है—मेरा पति नहीं है। पत्नी न होने के कारण आप यहाँ आए। जिन्हें पत्नी नहीं उन्हीं के लिए दुकान खोली है मैंने। आप स्वयं गाहक के नाते मेरे यहाँ आए—कितना सौभाग्य है मेरा! धर्म ने मुझे ठुकरा दिया पर कर्म फिर हमें एक जगह ले आया। आपकी सेवा का पुण्य फिर से मुझे मिलेगा। कितनी भाग्यवान् हूँ मैं।—**(फिर उसके गले में हाथ डालती है। वह उठकर जाने का प्रयत्न करता है पर वह जबर्दस्ती उसे बैठा लेती है।)**

जगदीश—निर्लज्ज! बेशरम! बेहया!

अबला—क्या मैं पहिले निर्लज्ज थी? बेहया थी? किसने मुझे निर्लज्ज बनाया? किसने बेहया बनाया? **(वह उठकर जाना चाहता है। डाँटकर)** चुपचाप बैठे रहिए! अब क्यों शरम आती है आपको? वेश्या चाहिए थी न आपको? अब वह आपको मिल गई। मुझे गाहक चाहिए था—वह मुझे मिल गया। अब वह पहले का सम्बन्ध नहीं रहा, अब जो मैं हूँ, वह यह हूँ और आप मेरे गाहक हैं। आइये, बिल्कुल निकट आइये। कसकर बाहुपाश में भर लीजिए मुझे। आइये न। अब लाज किसकी? शर्म किसकी? केवल दुकानदारी है यह। आइये

न ! (वह उसके दोनों हाथ पकड़कर जबर्दस्ती उसे अपने पास खींचना चाहती है। वह उसका हाथ झिड़ककर जाने का प्रयत्न करता है। वह फिर उसे पकड़ लेती है।)

जगदीश—(जोर से चिल्लाकर) नहीं ! नहीं ! नहीं !

अबला—(उससे उलझती हुई) नहीं कैसे ? मेरी दुकान से गाहक इस प्रकार विमुख होकर नहीं जा सकता । यहाँ धर्म नहीं है, प्रेम नहीं है और न ही गृहस्थी है। यहाँ तो सीधा-सा लेन-देन का सौदा है यह । मुझे पैसा चाहिए। विना पैसा वसूल किए कैसे जाने दूँगी मैं आपको ?

जगदीश—(नोट फेंकता है) यह लो पैसा !

अबला—पैसा मुफ्त नहीं चाहिए मुझे !

[उनकी हाथापाई बराबर चालू रहती है।]

जगदीश—दौड़ो, अरे दौड़ो कोई (भीतरी दरवाजे के पास मा आकर खड़ी हो जाती है। उसे देखते ही जगदीश सुन्न हो जाता है । अबला उसका हाथ कसकर पकड़ लेती है।)

जगदीश—(गम्भीर स्वर में) मा !

मा—छोड़ उसका हाथ, छोड़ कह रही हूँ न ।

जगदीश—(गिड़गिड़ाकर) मैंने कहाँ पकड़ा है इसका हाथ ? इसी ने पकड़ रक्खा है मुझे।

अबला—पैसे दिए विना भाग जाने वाले गाहक को इस प्रकार पकड़ कर न रक्खा जाय तो निर्वाह किस प्रकार होगा हमारा ?

जगदीश—मा ! मा ! तुम यहाँ ?

मा—तो कहाँ होती मैं ?

जगदीश—(अबला से) छोड़ो मेरा हाथ !

मा—छोड़ दो उसका हाथ !

अबला—नहीं, प्राण जाने पर भी अब मैं इन्हें नहीं जाने दूँगी।

मा—छोड़ दो उसका हाथ। नहीं जायगा वह । मैं यहाँ हूँ। मेरे लिए तो भी नहीं जायगा वह । कुछ भी हो फिर भी कलेजे का टुकड़ा

है वह मेरा। छोड़ो उसका हाथ।

[वह उसका हाथ छोड़ती है। हाथ छोड़ते ही वह दरवाजे की ओर भागता है। मा 'जगदीश' कहकर उसे पुकारती है। दरवाजे में करीम चाचा और राखाल आते हैं। उनके कारण जगदीश का मार्ग रुक जाता है।]

अबला—चाचा जी !

राखाल—मा ! भाभी !

करीम—भाभी ! और यह जगदीश यहाँ कैसे ? क्यों भाग रहा है यह ?

अबला—पकड़ रखिए इन्हें। यह मेरे गाहक हैं।

राखाल—क्या कह रही हो यह भाभी ?

अबला—गाहक बनकर आए हैं यह ! मुझे ढूँढ़ने नहीं आए थे !

राखाल—गाहक !—मा !

अबला—मा भी मर गई तुम्हारी ! चेहरों में साम्य देखकर तुम चौंके राखाल ! यह वेश्या का घर है। और यह वेश्या बुड्ढी है।

करीम—या अल्लाह ! आखिर इस सीमा तक पहुँच गई बातें ? (जगदीश से) इसलिए आए थे तुम यहाँ ? और वेश्या के स्थान में यह मिली तुम्हें।

अबला—इन्होंने ही तो भेजा था मुझे इस जगह ?

मा—कहाँ जाते हम लोग ? हमारे ही लोगों ने हमें घर से निकाल दिया—परायों द्वारा किए हुए अत्याचारों के दाग इन घर के लोगों द्वारा किए हुए अत्याचारों के समक्ष साफ मिट गए। वह क्या करती ? जहाँ आत्मीय जनों ने हमें भ्रष्ट औरतें कहकर ठुकराकर घर से निकाल दिया वहाँ दूसरे हमें क्यों आश्रय देने लगे ? जगदीश, बोलो न। चुप क्यों हो ?

जगदीश—मुझे जाने दीजिए—इस नरक की सीमा के बाहर जाने दीजिए मुझे।

अबला—आप स्वयं ही तो आए थे इस नरक की सीमा के भीतर !

जगदीश—छोड़ दीजिए मेरी राह। जाने दीजिए मुझे।

करीम—ठहरो जगदीश। आज कई महीनों से सारा बंगाल छान मारा है हम दोनों ने—आखिर इस कलकत्ते में आए हम। इस अपार सागर में बिन्दु के समान हो तुम दोनों, कैसे खोज पाते हम? उस मण्टू से कुछ सुराग पाया मैंने।

मा—वही हमारी मदद करता है?

जगदीश—वह जानता था यह?

मा—हाँ।

जगदीश—देह-विक्रय में वह तुम्हारी मदद करता था?

अबला—नहीं, नाच-गाने के लिए गाहक ला देने में।

मा—मण्टू न मिलता तो मेरी बहू को देह-विक्रय के अतिरिक्त कोई चारा ही न रहता।

राखाल—सुना दादा?

जगदीश—सुना—सुना—सब कुछ सुन लिया!

मा—क्या सुना? जब से गाँव छोड़ा है हम किस प्रकार भटक रही हैं—शरीर ढकने के लिए कपड़ा भी न था—सिर टेकने के लिए भी स्थान न था। ऐसी दशा में मेरे लिए मेरी इस बहू ने जो कष्ट सहन किए हैं उनका तुम्हें कहाँ पता है? इस जलती हुई खाई में प्रपंच रचकर किस प्रकार उसने अपना शील बनाए रक्खा वह कहाँ पता है तुम्हें? और इसी को लात मारी थी तुमने। तुम्हारा नाम स्मरण करते समय इसकी आँखों से जो आँसुओं की धाराएँ बहती थीं वह पता है तुम्हें? और तुम उस समय क्या कर रहे थे? आराम से दिन बिता रहे थे! सुख से पेट भर खाना खाते थे! और उस अन्न की मस्ती चढ़ने के कारण वेश्या का घर ढूँढ़ने निकले थे! यह तुम्हारा धर्म है! और तुम धर्मात्मा हो! और इसी धर्म की रक्षा के लिए बुड्ढी मा और अबला पत्नी को तुमने घर से निकाला? आग लगाओ अपने इस धर्म को।

करीम—ऐसा न कहो भाभी। सभी को धर्म प्यारा है। पर धर्म की

जो विडम्बना हो रही है वह ऐसे झूठे धर्म-रक्षकों के हाथों ! आप लोग क्या और हम लोग क्या दोनों ही एक प्रकार के आत्मघातकी हैं—अब क्या करने का विचार है जगदीश ? (जगदीश चुप है) बोलो, क्या विचार है ?

राखाल—बोलो दादा, क्या करोगे ?

अबला—बोलिए, क्या कीजिएगा ? आज तक मैंने अपना शील बनाए रक्खा—भ्रष्ट हुई थी तो वहाँ—उस जबर्दस्ती के कारण ! अब यदि आप ने मेरी उपेक्षा की तो···

करीम—चुप रहो बेटी, ये घिनौने शब्द मुँह से न निकालो। जगदीश, तुम्हारे पिता का मैं दोस्त हूँ। रक्त का सम्बन्ध न था तो भी हम दिल से दो भाई थे। बड़ा-बूढ़ा होने के नाते मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ—इसे स्वीकार करो। **(जगदीश चुप रहता है)**

राखाल—बोलो दादा, अब मुँह क्यों बन्द हो गया ? इतना होने पर भी तुम्हारे अन्दर का देवता नहीं बोलता ? जानते हो करीम चाचा को घर-निकाला दे दिया है उनके लड़कों-पोतों ने—हम लोगों के कारण निकाल दिया है। नोआखाली की रक्षा के लिए दौड़कर आए हुए महात्माजी की सेवा करते थे इसलिए निकाल दिया है। उस महात्मा ने बार-बार दुहराया है—जबर्दस्ती से स्त्री भ्रष्ट नहीं होती; जबर्दस्ती की कसौटी पर भी जिसने अपना शील बचा लिया है वह पवित्रातिपवित्र है, यह कहा है उस महात्मा ने···

मा—सुना जगदीश ?

करीम—इस पवित्र अबला को स्वीकार करो। जानते हो जबर्दस्ती से भ्रष्ट की गई स्त्रियों को घर से निकाल देने से क्या होगा ? वीरान हो जायगा सारा पूर्व बंगाल, क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी मातृभूमि उजाड़ हो जाय ?—**(क्षण भर शान्ति रहती है)** अबला, उसका हाथ पकड़ो। पाणिग्रहण करो उसका। यह दुबारा विवाह हो रहा है तुम दोनों का। उसका हाथ पकड़ो !

अबला—आइए। उस समय हाथ पकड़ा था और गृहस्थी चलाई थी

आपकी। अभी हाथ पकड़ा, पकड़कर रक्खा वह क्या आपको यों ही छोड़ देने के लिए? आइए, मेरा हाथ पकड़िए (डाँटकर) पकड़िए मेरा हाथ! (थर-थर काँपता हुआ वह अपना हाथ आगे बढ़ाता है। राखाल दोनों के हाथ मिला देता है।) और आइए इधर। अपनी इस माता को नमस्कार कीजिए। इस पूर्व बंगाल की माता को नमस्कार कीजिए। (जगदीश और अबला मा को नमस्कार करते हैं।)

राखाल—वंदे मातरम्!

ॐ तत्सत्!